पद्य-पद्माकर

संकलनकर्ता
बुद्धिनाथ शर्मा

पद्य-प्रभाकर

हाईस्कूल कक्षाओं के निमित्त

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह
Specimen Copy - 1954

संकलनकर्त्ता—

बुद्धिनाथ शर्मा

अध्यापक सञ्जौन्स हाईस्कूल,
आगरा

आगरा

रामप्रसाद एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

मूल्य १॥)

किसी व्यक्ति और समाज के जीवन की सरसता, सुन्दरता और भावो की उन्नति तथा अवनति का परिचायक और साधक साहित्य है। गद्य और पद्य दोनो प्रकार के साहित्य-क्षेत्र में पद्य का मुख्य स्थान है। कला का आश्रय लेते हुए पद्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के चातुर्य को प्रकट कर सकने वाले चतुर और प्रतिभावान् कवि विरले ही होते है। उनमे भी अपनी सरस और उत्तम कृतियों के कारण दिग्दिगन्त में कीर्ति-कौमुदी को फैलाने वाले और प्राणियो को अलौकिक आनन्द से सुखित करने वाले इने-गिने ही है।

हिन्दी-कवियो में हिन्दी भाषा के साहित्य को उन्नत कर युगान्तर उपस्थित करने वाले कुछ प्राचोन और अधिकांश आधुनिक २३ कवियो के काव्यो का इस 'पद्य-पद्माकर' नामक संग्रह मे समावेश किया गया है। हिन्दी-साहित्य की उन्नति में हाथ बटाने वाली कुछ स्त्री कवियों की कविताओं को भी इसमें स्थान दिया गया है।

कविताओ का चुनाव करते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि विद्यार्थीगण हिन्दी-कविता की सभी काव्य-भाषाओ

ब्रज, अवधि तथा खड़ी बोली—के उपयुक्त नमूने पावें, उनके माधुर्य का रसास्वादन करें और हिन्दी के प्रत्येक श्रेणी के लब्ध प्रतिष्ठ तथा प्रतिनिधि कवियो से परिचित हो जायँ।

संकलन के सभी स्थल अशिष्टता, अश्लीलता आदि दोषों से सर्वथा रहित है। प्रत्येक पाठ सद्विचारो एव सद्भावनाओं के उद्दीप्त करने और हृदय मे उच्चादर्शों को चित्रित करने की क्षमता रखता है। गूढ़ स्थलो पर प्रकाश डालने को दृष्टि से तथा अन्तर कथाओ के ढूँढ़ने में पर-सापेक्षता बचाने के लिये संकलन के अन्त मे कुछ टिप्पणी भी जोड़ दी है, जिनमे दुर्बोध स्थलो तथा विशेष कर विदेशीय और प्रान्तीय प्रयोगो के अर्थ दिये गये है।

जिन कवियो की रचनाओ का इसमे और संकलन किया गया है उनका मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आशा है यह संकलन विद्यार्थियो के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। तभी मै अपना प्रयास सफल समझूँगा।

दीपमालिका
सवत् १६६६

—बुद्धिनाथ शर्मा

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

पद्य-पद्माकर

१—कबीरदास

भक्तवर महात्मा कबीरदास की जन्मकथा बड़ी रहस्यपूर्ण है। इनका जन्म एव मृत्यु काल विविध ग्रन्थो मे अनेक प्रकार से लिखा हुआ है। 'कबीर कसौटी' मे इनका काल सम्वत् १४५५ तथा १५७५ और 'भक्ति-सुधा-विन्दु स्वाद' मे संवत् १४५१ तथा १५५२ में माना गया है। 'कबीर कसौटी' ही को इनके जन्म के विषय मे प्रमाणित मानते हैं और मृत्यु काल के लिए 'भक्ति-सुधा-विन्दु-स्वाद' को, इस तरह से महात्मा कबीर की अवस्था लगभग ९७ वर्ष की निकलती है। इनके माता और पिता का नाम नीमा और नीरू था। ये जाति के जुलाहे थे। किसी-किसी का यह भी कथन है कि नीमा और नीरू कबीरदास के पालक मात्र थे और इनका जन्म सम्भवत. काशी में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। जो लोक-लाज के भय मे इन्हें लहरतारा तालाब के पास डाल गई थी। नीमा और नीरू ने इन्हे वहाँ से उठाकर पाला। हमारी सम्मति में यह मनगढन्त है क्योंकि इन्होंने अपने को बार-बार काशी का जुलाहा ही वर्णन किया है। आप बड़े ईश्वरभक्त थे। इनका अधिकांश समय साधु-संगति ही मे व्यतीत होता था। ये पूर्ण निस्पृह, त्यागी तथा आडम्बर रहित थे। कुछ लोग इन्हे तत्कालीन सूफी फ़कीर मीर तकी का शिष्य बतलाते हैं, परन्तु वास्तव मे इनके गुरु काशी के प्रसिद्ध महात्मा रामानन्द ही थे।

कबीर साहब अशिक्षित थे। आपने जितनी कविताएँ बनाई हैं वे मौखिक हैं। बीजक में आप स्वयं लिखते हैं:—

"मसि कागद छूवो नहीं कलम गहे नहिं हाथ।
चारिउ जुग का महातम कबिरा मुखहिं जनाई बात॥"

कबीर साहब की स्त्री का नाम लोई था, जो आतिथ्य सत्कार की साक्षात् प्रतिमा थी—और पुत्र का नाम कमाल था।

कबीर साहब का मुख्य उद्देश्य कपड़ा बुन कर बाज़ार में बेचना था। जो कुछ आय होती, साधुओं को दे देते थे। वास्तव में महात्मा कबीर समाज सुधारक थे, वे इतने प्रभावशाली सुधारक थे कि अपने जीवन-काल मे ही एक विस्तृत जनसमुदाय को अपना अनुयायी बना लिया था, जो आज भी 'कबीर पथी' के नाम से जीवित है। इस वर्ग में हिन्दू और मुसलमान दोनो हैं। कबीर अपढ तो थे ही उन्होंने जो मुख से कहा, उसे उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। इसी से भाषा की विभिन्नता मिलती है। इनकी रचना मे कूट पद या पदों की भरमार है। कथन साधारण पर गूढाशय से पूर्ण है। कबीर की कविताएँ— रमैनी, साखी और शब्द—इन तीन भागो में विषय के अनुसार विभाजित हैं। इन कविताओ के संग्रहों मे बीजक सबसे प्रसिद्ध है। यह कबीर पंथियो का धर्म ग्रन्थ है। इनके दो सग्रह नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'कबीर बचनावली' और 'कबीर ग्रन्थावली' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) साखी

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गुर दियो बताय ॥ १ ॥

मालिन आवत देख करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार ॥ २ ॥

बाढ़ी आवत देख करि, तरवर डोलन लाग।
हम कटे की कुछ नहीं, पखेरू घर भाग ॥ ३ ॥

फागुन आवत देखकरि, बन रूना मन माहि।
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाहि ॥ ४ ॥

बन की दाधी लाकड़ी, ठाड़ी करै पुकार।
मति बसि परौं लुहार के, जालै दूजी बार ॥ ५ ॥

मेरा बीर लुहारिया, तू मति जालै मोहि।
इक दिन ऐसा आयगा, हौं जालोंगी तोहि ॥ ६ ॥

जिभ्या में अमृत बसै, जो कोई जानै बोलि।
बिस वासिक का ऊतरै, जिभ्या काहि हिलोलि ॥ ७ ॥

हरि-संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निसि-बासर-सुख-निधि लहा, अंतर प्रकटा आप ॥ ८ ॥

कया-कमंडल भरि लिया, अच्छर निरमल नीर।
तन, मन, जीवन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥ ६ ॥

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूँ तो झूठ।
मै का जानौं राम कूँ, नैनूँ कबहुँ न दीठ ॥ १० ॥

आस एक जिय राम की, दूजी आस निरास ।
पानी माही घर करै, तौ भी मरै पियास ॥ ११ ॥

यह तन तो सब बन भया, कर्महि भये कुल्हारि ।
आप आपको काटि है, कहै 'कबीर' बिचारि ॥ १२ ॥

करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताय ।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय ॥ १३ ॥

उत ते कोइ न आवई, जासो पूछूँ धाय ।
इत ते सब ही जात है, भार लदाय लदाय ॥ १४ ॥

स्वामी होना सो रहा, दूरा होना दास ।
गाडर आनी ऊन को, बाँधो चरै कपास ॥ १५ ॥

रासि पराई राखता, खाया घर का खेत ।
औरन को परबोधता, मुख में परिया रेत ॥१६॥

तन सराँय, मन पाहरू, मनसा उतरी आय ।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंकि-बजाय ॥१७॥

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन-धन-खान ।
जो आवै सन्तोष-धन, सब धन धूरि-समान ॥१८॥

'कबिरा' हरदी पीयरी, चूना उज्जर भाय ।
राम सनेही यौं मिलै, दूनौ बरन गवाँय ॥१९॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटे उँजेरा होय ॥२०॥

दाता के है धन घना, सिर सूरे की बीस ।
पतिबरता के तन नहीं, पति राखै जगदीस ॥२१॥

कबीर सांई तो मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात ।
आदि अन्त की कहूँगा, उर अन्तर की बात ॥२२॥

केसन कहा बिगाड़िया, जे मूड़ौ सौ बार ।
मन कौ काहे न मूँडिए, जामैं विषै विकार ॥२३॥

कबीर मन्दिर लाख का, जड़िया हीरै लाल ।
दिवस चार का पेखना, बिनस जाइगा काल ॥२४॥

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग ।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यों काँचली भुवंग ॥२५॥

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै परंत ।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत ॥२६॥

तन कौ जोगी सब करें, मन को बिरला कोइ ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥२७॥

'कबीर' निरभै राम जप, जब लगि दीयै बाति ।
तेल घटा बाती बुझी, सौवैगा दिन राति ॥२८॥

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि ।
पीछे हो पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ॥२९॥

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहुमार ।
कहौ संतो क्यों पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ॥३०॥

ऊँचै कुल क्या जनमियाँ, जे करनी ऊँच न होइ ।
सोवरन कलस सुरा भरा, साधू निंदै सोइ ॥३१॥

जानि बूझि साँचहिं तजै, करै झूठ सो नेहु ।
ताकी संगति राम जी, सुपिनै हू जिनि देहु ॥३२॥

संत न छाड़ै संतई, कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुवँगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥३३॥

(२) पद

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज, टका दस गठिया, टेढ़ौ, टेढौ जात ॥
कहा लै आयो यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूं बनि हरियल पात ॥
राजा भयो गाँव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात।
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल में गई बिहात ॥
माता, पिता, लोक, सुत, बनिता, अंत न चले सँगात।
कहै 'कबीर' राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥ १ ॥

जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नही निस बासरि, बिडरत नही बिडारे ॥
अपने-अपने रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे।
अति अभिमान बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचिहारे ॥
बुधि मेरी किरषी,गुर मेरौ बिझुका,आखिर दोइ रखवारे।
कहै 'कबीर' अब खान न दैहूँ, बरियाँ भली संभारे ॥ २ ॥

करम-गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता-हरन, मरन दसरथ को बन में बिपति परी ॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरगचरी।
सीया को हरि लैगौ रावन सुबरन लंक जरी ॥

नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप, गिरगिट जोन परी॥
पाँडव जिनके आप सारथी तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी॥
राहु-केतु औ भानु-चन्द्रमा बिधि-संजोग परी।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो होनी होके रही॥ ३॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
निरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठो राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै 'कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥४॥

मन रे हरि भजु हरि भजु भाई।
जा दिन तेरो कोई नाही, ता दिन राम सहाई॥
तन्त्र न जानूँ मंत्र न जानूँ, जानूँ सुन्दर काया।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया॥
बेद न जानूँ, भेद न जानूँ, जानूँ एकहि रामा।
पंडित-दिसि पछिवारा कीन्हाँ, मुख कीन्हौ जित नामा॥
राजा अंबरीस कै कारन, चक्र सुदरसन जारै।
दास 'कबीर' कौ ठाकुर ऐसौ, भगत कौ सरन उबारै॥५॥

२—महात्मा सूरदास

कवि-कुल-शिरोमणि भक्त-प्रवर सूरदासजी ने चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता के अनुसार लगभग सवत् १५४० मे आगरा से मथुरा जाने वाली सडक पर रुनकुता ग्राम मे श्री रामदासजी नामक सारस्वत ब्राह्मण के घर मे जन्म लिया। कोई भक्त सूरदासजी को जन्मान्ध कहते है तो कोई कहते है कि वह जन्मान्ध न थे। कोई भी जन्मान्ध इस प्रकार मानव स्वभाव एव प्रकृति की अनेक वस्तुओ और रग-रूपादि का वर्णन नही कर सकता, अत वह जन्मान्ध न थे। यह बडे खेद का विषय है कि हिन्दी साहित्य सूर के बारे में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण द्वारा उनका जीवन-वृत्त स्थिर न कर सका। ये वल्लभाचार्य के अष्ट प्रधान शिष्यो मे प्रधान थे। इन्हीं के आदेश से इन्होने श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण-चरित्र सम्बन्धी 'सूरसागर' नामक ग्रन्थ की रचना की। इन्होने सवालाख पद बनाये थे, पर अब छः हजार से अधिक पद नही मिलते। परन्तु छः हजार पद ही कवि की कवित्व-शक्ति के अद्भुत चमत्कार के परिचायक है। सूर हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। गोस्वामी जी को छोडकर हिन्दी का कोई कवि इन तक नहीं पहुँच सका है। कुछ लोग तो इन्हे गोस्वामी जी से भी ऊँचा स्थान निम्न दोहे के आधार पर देते है:—

सूर सूर तुलसी ससि उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥

कुछ भी सही, पर दोनों कवियों का लोक-कल्याण की दृष्टि से समान आदर है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों में सूर तुलसी से ऊँचे ठहरते हैं। भाषा की दृष्टि में दोनो का समान अधिकार है।

सूर की भाषा ब्रजभाषा है। अलकारो की भी कमी नहीं है। वात्सल्य और शृङ्गार रसों की सरिताओ का प्रवाह अद्वितीय है। जैसा कृष्ण भगवान् का जीता जागता चित्र सूर ने खीचा है वैसा कोई अन्य कवि चित्रित नही कर सका। सूर काव्य मे सगीत का तत्व भी है। सूर ने राग रागिनियो मे जो कविताएँ लिखी है वह बडी धार्मिक तथा प्रभावोत्पादक है।

इनके लिखे हुए निम्न-लिखित ग्रन्थ कहे जाते है :—

१—सूर सागर। २—सूर सारावली।

३—ब्याहलो। ४—नल दमयन्ती।

५—पद सग्रह। ६—नाग लीला।

उपर्युक्त ग्रन्थो मे से प्रथम दो ग्रन्थ ही प्राप्त है। दूसरा ग्रन्थ पहले ग्रन्थ की सूची मात्र है। अत: सूर सागर पर ही सूरदास की कीर्ति आधारित है। भक्त लोग आपको ऊधवजी का अवतार मानते है। इसमें कोई सदेह नही कि सूर जी मे श्री कृष्ण भक्ति बडी ही प्रगाढ रूप में विद्यमान थी। सूर वास्तव मे अद्वितीय मर्मज्ञ और कवि कुल शिरोमणि थे।

महाकवि सूरका मृत्यु काल पारसोली गाँव में सवत् १६२० के लगभग माना जाता है।

(१) विनय

चरण-कमल बन्दौ हरिराई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई ।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौ तेहि पाई ॥ १ ॥

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पर आवै ॥
कमल-नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यो, क्यो करील फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥ २ ॥

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यो गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने सो पावै ।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब विधि अगम विचारहि तातैं 'सूर' सगुन लीला पद गावै ॥३॥

हरि हौं सब पतितन को नायक ।

को करि सकै बराबरि मेरी और नहिं कोउ लायक ॥
जैसौ अजामिल को दीनो सोइ पटो लिखि पाऊँ ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरे औरो पतित बुलाऊँ ॥

यह मारग चौगुनो चलाऊँ तौ पूरो व्यौपारी।
बचन मानि लै चलौ गाँठि दै पाऊँ सुख अति भारी॥
यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमटै आइ होइँ इक ठौर।
अबकी तौ अपनी लै आयौ, बेर बहुरि की और॥
होड़ा होड़ी मन हुलास करि किये पाप भरि पेट।
सबै पतित पाँयन तर डारौं इहै हमारी भेट॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीन्हे भरि भाँड़ो।
लीजै नाथ निबेरि तुरंतहि 'सूर' पतित को टाँड़ो॥४॥

(२) बालकृष्ण

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सी आवै, तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत है, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि, करि करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ, सो नँद-भामिनि पावै॥५॥

कहन लगे मोहन मैया मैया।
पिता नंद सो बाबा बाबा, अरु हलधर सों भैया॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।
दूरि कहूँ जिनि जाहि लला रे, मारैगी काहू की गैया॥

गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर घर लेत बलैया।
मनि-खंभन प्रतिबिंब बिलोकति, नचत कुंवर निज पैया ॥
नंद जसोदा जी के उरते, इहि छवि अनत न जइया।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस को, चरनन की बलि गइया ॥६॥

हरि अपने आगे कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत, मनही-मनहि रिझावत।
बाँह उँचाइ काजरी धौरी, गैयन टेरि बुलावत ॥
माखन तनक आपने कर लै, तनक बदन में नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में, लवनी लिये खवावत ॥
दुरि देखत जसुमति यह लीला, हरखि आनद बढ़ावत।
'सूर' स्याम के बाल-चरित ये, नित देखत मन भावत ॥७॥

जसोदा कहँ लौं कीजै कानि?
दिन प्रति कैसे सही परत है, दूध-दही की हानि ॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।
गोरस खाय खवावै लरिकन, भाजत भाजन भानि ॥
मैं अपने मन्दिर के कोने, माखन राख्यो जानि।
सोई जाय तुम्हारे ढोटा, लीनो है पहिचानि ॥
बूझी ग्वालिन घर में आयो, नेकु न संका मानी।
'सूर' स्याम तब उतर बनायो, चींटीं काढ़त पानी ॥८॥

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय करि पानि गहावति, डगमगाय धरै पैयाँ ॥
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनन्द भरि लेति बलैयाँ।
कबहुँक बलि को टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलो दोउ भैया ॥

कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवौ मेरो बाल कन्हैया।
'सूरदास' प्रभु सब सुखदायक, अति प्रताप बालक नँदरैया ॥९॥

सखा कहत है स्याम खिसाने।
आपुहि आपु ललकि भए ठाड़े, अब तुम कहा रिसाने?
बीचहि बोलि उठे हलधर तब—इनके माय न बाप।
हार जीत कछु नैक न जानत, लरिकन लावत पाप॥
आपुन हारि सखा सौं झगरत—यह कहि दिए पठाई।
'सूर' श्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाई॥१०॥

३—राधिका-मिलन

बूझत स्याम—कौन तू गोरी?
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
स्रवननि सुनति रहित नँद ढोटा, करत रहत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहै, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी॥११॥

कहत कान्ह जननी समुझाई।
जहँ तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जानि लै जाय चुराई॥
साँझ-सकारे आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आई।
इनहीं में मेरो प्रान बसतु है, तेरे भाएँ नेक न माई॥
राखि छिपाइ, कह्यो करि मेरो, बलिदाऊ को जनि पति आई।
'सूरदास' यह कहति जसोदा—को लैहै मोहि लगै बलाई॥१२॥

४—श्याम-सौन्दर्य

लालन हौं बारी तेरे या मुख ऊपर ।
माई मोरिहि डीठि न लागै ताते मसि बिन्दा दयो भ्रूपर ॥
सर्वसु मैं पहिले ही दीनी नान्हीं नान्ही दन्तुली दूपर ।
अब कहा करो निछावरि 'सूर' यशोमति अपने लालन ऊपर ॥१३॥

५—ब्रज-बिरह

सखीरी श्याम कहा हित जानै ।
कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै ॥
देखो या जलधर की करनी बरसत पोपै आनै ।
'सूरदास' सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै ॥१४॥

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाही ।
वृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाँहीं ॥
प्रात समय माता यसुमति अस नन्द देख सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यौ सजायो अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हँसत खिरात ।
'सूरदास' धनि धनि ब्रजवासी जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥१५॥

ऊधौ धनि तुम्हरो व्यौहार ।
धनि वै ठाकुर धनि वै सेवक धनि तुम बरतन हार ॥
आम को काटि बबूर लगावत चन्दन झोंकत भार ।
'सूर' स्याम कैसे निबहैगी अन्ध धुन्ध सरकार ॥१६॥

३—मलिक मुहम्मद जायसी

कविवर जायसी अवध निवासी थे। इनके जन्मस्थान आदि अज्ञात हैं। ये जायस नगर में कहीं से आकर बसे थे जैसा स्वयं कहते हैं :—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आय कवि कीन्ह बखानू।

जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म गाज़ीपुर के किसी गरीब मुसलमान के यहाँ हुआ था। लड़कपन में ही इनके माता-पिता मर गये थे। शीतला (चेचक) की बीमारी में ये एक आँख से काने तथा एक कान से बहरे हो गये थे। जायस नगर में रहने के कारण ये जायसी प्रसिद्ध हुए। जायसी जी के पाँच ग्रन्थ हैं। पद्मावत, सुमनावती, मुग्धावती, प्रेमावती एवं अखरावट, इनमें से प्रथम और अन्तिम ये दो ही ग्रन्थ प्राप्य हैं। पद्मावत में प्रसिद्ध चित्तौड़ की रानी पद्मावती की कथा का वर्णन दोहे और चौपाई में किया है। अखरावट में कवि ने अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को लेकर वर्णमाला क्रम से उनका प्रतिपादन किया है।

पद्मावत से कवि की प्रसिद्धि अधिक है। इसमें कवि ने अत्यन्त सहृदयता से हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध तथा मनोहर कहानी का वर्णन किया है। उच्चकोटि की कविता की दृष्टि से इसमें प्रकृति वर्णन, चरित्र-चित्रण, रस और अलंकारों की सुन्दर योजना अवर्णनीय है।

जायसी के ग्रन्थों में ग्रामीण तथा अवधी भाषा का सौन्दर्य देखते ही बनता है। ये प्रकाण्ड पंडित तथा सहृदय थे। प्रस्तुत पुस्तक में 'पद्मावती ग्रन्थ से सिंहलद्वीप वर्णन नामक अवतरण दिया गया है, जो अत्यन्त रोचक है।

सिंहलद्वीप-वर्णन

सिंघल द्वीप कथा अब गावौं । औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ॥
निरमल दरपन-भाँति बिसेखा । जो जेहि रूप सो तैसइ देखा ॥
गन्ध्रबसेन सुगंध नरेसू । सो राजा वह ताकर देसू ॥
जबहि दीप नियरावा जाई । जनु कैलास नियर भा आई ॥
घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई । भइ जग छाँह रैनि होइ आई ॥
मलय समीर सोहावन छाहाँ । जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचे सहि कै घामू । दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पाई छाँह अनूपा । फिरि नहि आइ सहै यह धूपा ॥

अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौं अंत ।
फूलै फरै छवौ ऋतु, जानहु सदा बसंत ॥ १ ॥

बसिहि पंखि बोलहि बहु भाखा । करहि हुलास देखि कै साखा ॥
भोर होत बोलहि चुह चूही । बोलहि पांडुक "एकै तूही" ॥
सारौ सुआ जो रह चह करही । कुरहि परेवा औ कर बरहीं ॥
"पीव पीव" कर लाग पपीहा । "तुही तुही" कर गडुरी जीहा ॥
"कुहू कुहू" करि कोइल राखा । औ भिंगराज बोल बहु भाखा ॥
"दही दही" करि महरि पुकारा । हारिल बिनवै आपन हारा ॥
कुहकहिं मोर सोहावन लागा । होइ कुराहर बोलहिं कागा ॥

जावत पंखी जगत के, भरि बैठे अमराउँ ।
आपनि आपनि भाखा, लेहि दई कर नाउँ ॥ २ ॥

पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी॥
और कुण्ड बहु ठावहि ठाऊँ। सब तीरथ औ तिन्हके नाऊँ॥
मानसरोदक बरनौं काहा। भरा समुद अस अति अवगाहा॥
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुवासू॥
लंक दीप कै सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई॥
खंड खंड सीढ़ी भईं गरेरी। उतरहि चढ़हि लोग चहुँ फेरी॥
फूला कँवल रहा होइ राता। सहस सहस पखुरिन कर छाता॥
उलथहि सीप, मोति उतिराहीं। चुगहि हंस औ केलि कराहीं॥
खनि पतार पानी तहँ काढ़ा। छीर समुद निकसा हुत बाढ़ा॥

ऊपर पाल चहूँ दिसि अमृत फल सब रूख।
देखि रूप सरवर कै गै पियास औ भूख॥३॥

पानि भरै आवहि पनिहारी। रूप स्वरूप पदमिनी नारी॥
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागी तिन्ह संग फिराहीं॥
लंक-सिंघिनी सारंग-नैनी। हंसगामिनी कोकिल-बैनी॥
आवहि झुण्ड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ सुभाँतिहिं भाँती॥
कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं। रहस केलि सन आवहि जाहीं॥
केस मेघावर सिर तापाईं। चमकहि दसन बीजु कै नाईं॥

माथे कनक गागरी, आवहि रूप अनूप।
जेहि के असि पनिहारी, सो रानी केहि रूप॥४॥

ताल तलाब बरनि नहीं जाहीं। सूझै वार-पार कछु नाहीं॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महँ तारे॥
उतरहि मेघ चढ़हि लेइ पानी। चमकहि मच्छ बीजु कै बानी॥

पौरहिं पख सुसंगहि संगा । सेत पीत राते बहु रंगा ॥
चकई चकवा केलि कराहीं । निसिक बिछोह दिनहिं मिलि जाहीं ॥
कुररहि सारस करहि हुलासा । जीवन मरन सो एकहि पासा ॥
बोलहि मोन ढेक बगलेदी । रही अबोल मीन जल-भेदी ॥

नग अमोल तेहि तालहि दिनहि बरहि जस दीप ।
जो मरजिया होइ तहँ सो पावै वह सीप ॥५॥

आस पास बहु अमृत बारी । फरी अपूर होइ रखवारी ॥
नारँग नीबू सुरँग जँमोरा । औ बदाम बहु भेद अँजीरा ॥
गलगल तुरंज सदाफर फरे । नारँग अति राते रस भरे ॥
किसमिस सेब फरे नौ पाता । दारिउँ दाख देखि मन राता ॥
लागि सुहाई हरफारयोरी । उनै रही केरा कै घौरी ॥
फरे तूत कमरख औ न्योजो । राय करौंदा बेर चिरौंजी ॥
संगतरा व छुहारा दीठे । और खजहजा खाटे मीठे ॥

पानि देहि खँड़वानी, कुवहि खाँड बहु मेलि ।
लागी घरी रहँट कै सीचहि अमृत बेलि ॥६॥

४—गोस्वामी तुलसीदास

कवि कुल-कुमुद कलाधर गोस्वामीजी का जन्म सं० १५९८ में बाँदा जिले के राजापुर गांव मे हुआ था। शिवसिंह सेंगर ने १५८३ में इसका जन्म होना लिखा है। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम था। वेणी माधवदास के 'मूल गोसाईं चरित' मे लिखा है कि इन के पेट ही से दांत उग आये थे और जन्म देकर ही इनकी माता का देहान्त हो गया था। एक दासी ने पाँच बरस तक इनका पालन किया किन्तु साँप के काटने से वह भी मर गई। कुलक्षण समझ कर इनके पिता ने इन्हे त्याग दिया। पश्चात् नरहर्यानन्दजी ने इनको पाला-पोसा और इनके सब संस्कार किये। इन्हीं के सत्संग से गोस्वामीजी के हृदय मे श्री रामचन्द्रजी की भक्ति का बीजारोपण हुआ। विवाह होने के बाद से ही ये अपनी पत्नी पर अत्यन्त आसक्त थे। एक बार उसी के कटु-वाक्य सुनकर विरक्त हो गये और काशी, चित्रकूट, अयोध्या आदि तीर्थों में रहने लगे और पूर्णरूप से विद्याध्ययन की। ये पक्के रामभक्त थे। धीरे-धीरे ये राम-विषयक कविता भी करने लगे। कहते हैं कि राम की भक्ति से इन्हे 'राम' का साक्षात् दर्शन भी हुआ था।

गोस्वामी जी हिन्दी के सबसे बडे कवि माने जाते है। उनका मुख्य ग्रन्थ 'राम चरित मानस' है जो अवधि भाषा मे लिखा गया है। कविता

की दृष्टि से 'मानस' उच्चकोटि का काव्य है। मानव जीवन की कोई परिस्थिति इसके क्षेत्र से बाहर नहीं रही। गोसाईं जी ने ही उस समय की निराशा सागर मे डूबी हुई हिन्दू जाति की उन्नति की और हिन्दू धर्म को बचाया। आप विश्व कवि कहे जाते हैं। इनकी गणना नवरत्नो मे है। इन्होंने ब्रज और अवधि दोनो भाषाओ मे कविता की है। इनकी भाषा सरल और व्यवस्थित है। जनसाधारण और पांडित्य दोनों की दृष्टि से उत्तम मानी गई है।

गोस्वामीजी के लिखे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ है —

१—रामचरित मानस
२—विनय पत्रिका
३—कवितावली रामायण
४—दोहावली रामायण
५—गीतावली रामायण
६—बरवै रामायण
७—जानकी मंगल
८—रामलला निहछू
९—पार्वती मगल
१०—कृष्ण गीतावली
११—वैराग्य सन्दीपनी
१२—राममाला प्रश्न इत्यादि

गोस्वामीजी का निधन श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन अस्सी घाट काशी मे हुआ था।

---

(१) पार्वती-तपस्या

गुन निधान हिमवान धरनि-धर धुरधनि ।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तिय-मनि ॥ १ ॥
कहहु सुकृत-केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
लीन्ह जाइ जग जननि जन्म जिन्ह के घर ॥ २ ॥
मगल खानि भवानि प्रगट जबते भई ।
तबते ऋधि-सिधि सम्पति गिरि-गृह नित नई ॥ ३ ॥
एक समय हिमावान-भवन नारद गये ।
गिरिवर-मैना मुदित मुनिहि पूजत भये ॥ ४ ॥
उमहि बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भई ।
मुनि सन कीन्ह प्रणाम, बचन आसिष दई ॥ ५ ॥
अति सनेह सतिभाय पाँय परि पुनि पुनि ।
कह मैना मृदु वचन "सुनिय विनती मुनि ! ॥ ६ ॥
तुम त्रिभुवन-तिहुँकाल-विचार-बिसारद ।
पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद !" ॥ ७ ॥
मुनि कह, "चौदह भुवन फिरउ जहँ जहँ ।
गिरिवर सुनिय सराहन राउरि तहँ तहँ ॥ ८ ॥
भूरिभाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
कुछ न अगम, सब सुगम, भयो बिधि दाहिन ॥ ९ ॥
विधि लोक चरचा चलति राउर चतुर चतुरानन कही ।
हिमवान-कन्या जोगवर वाउर विबुध वंदित सही ॥१०॥

मोरेहु मन अस आव मिलिहि वर बाउर ।
लखि नारद नारदी उमहि सुख भा उर ॥११॥
सुनि सहमें परि पाँय कहत भये दम्पति ।
गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥१२॥
"नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटइ जैहि दूसन" ।
"दोस दलन" मुनि कहेउ "बाल-विधु भूषन" ॥१३॥
अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
कोटि कल्पतरु-सरिस सम्भु अवराधन ॥१४॥
तुम्हरे आश्रम अबहिं ईस तप साधहि ।
कहिय उमहि मन लाय जाय अवराधहिं ॥१५॥
कहि उपाय दपतिहि मुदित मुनिवर गये ।
अति सनेह पितु-मातु उमहि सिखवत भये ॥१६॥
जननि-जनक-उपदेश महेसहिं सेवहि ।
अति आदर अनुराग-भगति मन भेवहि ॥१७॥
तजेहु भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु ।
मुनि-मनसहु ते अगम तबहि लायउ मनु ॥१८॥
सकुचहि बसन-बिभूसन परसत जो वपु ।
तेहि सरीर हर-हेतु अरभेउ बड़ तपु ॥१६॥
पूजहिं शिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन ।
देखि प्रेम व्रत-नेम सराहहि सज्जन ॥२०॥
नींद न भूख प्यास, सरिस निसि—बासर ।
नयन नीर, मुख नाम पुलक तनु हिय हर ॥२१॥

कंद-मूल-फल असन, कबहुँ जल पवनहिं ।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहि ॥२२॥
नाम अपरना भयो परन जब परि हरे ।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥२३॥
देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिवर मुनि बहुँ ।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ ॥२४॥
काहू न देख्यो कहहि यह तप जोग फल फल चारिका ।
नहिं जानि जाइ न कहति, चाहति काहि कुवर-कुमारिका ॥
बटु वेष पेपत प्रेम तन-व्रत-नेम ससि-सेखर गये ।
मनसहिं समरपेउ आप गिरिजहि वचनमृदु बोलत भये ॥२५
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय अस आयउ ॥२६॥
वंस प्रसंसि, मात-पितु कहि सब लायक ।
अमिय वचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक ॥२७॥
देवि ! करौ कछु विनय सो बिलगु न मानब ।
कहौ सनेह सुभाय सॉच जिय जानब ॥२८॥
अगम न कछु जग तुम कहॅ मोहि अस सूझइ ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥२९॥
जौ वर लागि करहु तप तौ लरिकाइय ।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ? ॥३०॥
मोरे लागी कलेस करिय बिनु काजहिं !
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहिं ॥३१॥

गौरी निहारेउ सखी-मुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
"तप करहि हर हित" सुनि बिहँसि बटु कहत मुरखाई महा॥
जेहि दीन्ह अस उपदेश बरेहु कलेस करि वर बावरो।
हित लागि कहौ सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो॥३२॥

कहहु काह सुन रीझहु बर अकुलीनहि।
अगुन-अमान-अजाति मातु-पितु हीनहि॥३३॥
भीख माँगि भव खाहि, चिता नित सोवहि।
नाचहि नगन पिशाच, पिसाचिन जोवहि॥३४॥
सुमुखि-सुलोचनि ! हर-मुख पच, त्रिलोचन।
वामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन॥३५॥
कहँ राउर गुन-सील-सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेष बिसेष भयावन॥३६॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु॥३७॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ॥३८॥
जनि कहहि कछु विपरीति जानत प्रीति-रीति न बात की।
सिव साधु निंदक मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी॥३९॥
सुनि वचन सोधि सनेह 'तुलसी' साँच अविचल पावनो।
भये प्रगट, करुनासिधु संकर भालचंद सुहावनो॥४०॥
सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल विसाल वदन मन मोहइ॥४१॥

सैल कुमारि निहारि मनोहर मूरति ।
सजल नयन हिय हरष पुलक तनु पूरति ॥४२॥
सफल मनोरथ भयऊ गौरि सोहइ सुठि ।
घरते खेलन मनहुँ अबहि आई उठि ॥४३॥
देखि रूप-अनुराग महेस भये बस ।
कहत वचन जनु सानि सनेह-सुधारस ॥४४॥
हमहि आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ ।
पारवती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ॥४५॥
अब जो कहहु सो करउँ विलम्ब न यहि घरि ।
सुनि महेस मृदु-वचन पुलकि पायन परि ॥४६॥
परि पाँय सखि-मुख कहि जनायो आप बाप अधीनता ।
परितोष गिरिजहि चले वरनत प्रीति-नीति प्रवीनता ॥
हर-हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह विधि मन भावनो ।
आनन्द प्रेम-समाज मंगल गान बाजु बधावनो ॥४७॥
बर दुलहिनिहि विलोकि सकल मन हरसहि ।
साखोच्चार-समय सब सुर मुनि बिहँसहि ॥४८॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥४९॥

(२) तुलसी-दोहावली

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
स्वाति सलिल रघुनाथ जस चातक 'तुलसीदास' ॥१॥

ऊँची जात पपीहरा, पिये न नीचो नीर।
कै जाँचे घनश्याम सों, कै दुख सहै सरीर ॥२॥
'तुलसी' साथी विपति के, विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्यव्रत, राम भरोसे एक ॥३॥
'तुलसी' असमय के सखा, साहस-धर्म-विचार।
सुकृती, सील, सुभाव रिजु, रामचरन आधार ॥४॥
नीच चग-सम जानिये, सुनि लखि 'तुलसीदास'।
ढील देत महि गिरि परत, खैंचत चढत अकास ॥५॥
राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जो चाहत उजियार ॥६॥
मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पान को एक।
पालै पोसै सकल अंग, 'तुलसी' सहित विवेक ॥७॥
सात स्वर्ग-अपवर्ग-सुख, धरिय तुला एक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥८॥
'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप पुन्य दोउ बीज है, बुवै सो लुनै निदान ॥९॥
'तुलसी' मिटै न मोह तम, किये कोटि गुन-ग्राम।
हृदय-कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल रवि-राम ॥१०॥

(३) नीति

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥१॥

कहिबै कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित, परमारथहि सुजान ॥२॥

लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहि विचारि ॥३॥

ग्रह-गृहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मारि ।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ? ॥४॥

ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन विश्राम ।
भूत द्रोह रत, मोह वस, राम बिमुख रत काम ॥५॥

कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ ।
तुलसी घृत ज्यो मधु सरिस, मिले महाविष होइ ॥६॥

मान्य नीत सो सुख चहै, सो न छुवै छल छाँह ।
ससि, त्रिसकु, कैकेइ गति लखि "तुलसी" मन माँह ॥७॥

सदा न जे सुमिरत रहहि, मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
ते पै तिन्ह के जाहि घर जिनके हिये न नैन ॥८॥

माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भये लोग ।
भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेम पथ जोग ॥९॥

हृदय कपट बर वेष धरि, बचन कहैं गढ़ छोलि ।
अब के लोग मयूर ज्यो, क्यो मिलिये मन खोलि ॥१०॥

५—मीराबाई

राठौर की मेडतिया शाखा मे जन्म लेकर मीराबाई ने उसे गौरवान्वित किया है। इनका जन्म जोधपुर राज्य के कुडकी ग्राम मे वि० सं० १५६० के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम रत 'ह था, जो राठौर क्षत्रियो की प्रसिद्ध मेड़तिया शाखा के जन्मदाता राव दूदा के पुत्र थे। मीरा बाल्यकाल मे ही मातृ-प्रेम से वचित हो गई और अपने पितामह के यहाँ जाकर मेडते मे रहने लगी। १५७३ सवत् के आसपास चित्तौड के प्रसिद्ध राना साँगा के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार भोजराज के साथ इनका विवाह हुआ। किन्तु दुर्भाग्यवश भोजराज की मृत्यु १५८० के लगभग हो गई। इस दुर्घटना से मीरा के हृदय पर बहुत प्रभाव पडा। पति की असामयिक मृत्यु से मीरा का कौटम्बिक जीवन नीरस हो गया। मीरा वैसे तो बचपन से ही ईश्वर भक्ति परायणा थी। पर अब तो वे अपना जीवन साधु-सेवा में व्यतीत करने लगी और उनके साथ रहने लगी। ये बात तत्कालीन राजा विक्रमाजीतसिंह को बुरी लगी। मीरा को समझाया, परिणाम कुछ न निकला। इनको बहुत कष्ट भी दिये गये, जिनसे ऊब कर महलो को छोड कृष्ण-भूमि वृन्दावन मे कृष्णभक्ति करने लगीं। कृष्ण-भक्ति के पद गाया करती और कृष्ण को सच्चा पति मानती थी। मीरा कृष्ण के प्रेम में इतनी डूबी। जैसा कि कहा भी है—

'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।'

वह कृष्ण की हैं । कृष्ण उनके हैं । उनका यही एकाकी भाव और उनकी यही तन्मयता इनके काव्य की कसौटी है । मीरा के लिए सारा संसार कृष्णमय है ।

मीरा ने काव्य रचना का कभी प्रयत्न नहीं किया । इनके पद आवेश में निकले हुए इनके आन्तरिक गूढ़ातिगूढ़ भावों के स्पष्ट चित्र हैं । इनके हृदय मे कवि होकर यश प्राप्त करने की कभी लालसा उत्पन्न नहीं हुई । इनकी भाषा राजस्थानी और ब्रज भाषा मिश्रित है । इनके कुछ पदों में भोजपुरी भाषा भी मिलती है । जितनी इनकी कविताएँ हैं वह सब कृष्ण-भक्ति की ही है । माधुर्य भाव प्रधान होने के कारण मीरा के गीत मनुष्यो के हृदय को भक्ति रस मे सराबोर कर देते है । स्त्री कवियो मे इनका स्थान सर्वोच्च है । भक्ति रस की ये साक्षात मूर्ति है । १६२०-३० के लगभग इनका मृत्यु काल माना जाता है ।

पद

बसो मोरे नैनन में नदलाल !

मोहनी मूरति, साँवरो सूरति, नैना बने हैं बिसाल ॥
मोर-मुकुट, मकराकृति कुण्डल, अरुण तिलक दिए भाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजति, उर बैजंती माल ॥
क्षुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर-सबद रसाल ।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भगतबछल गोपाल ॥१॥

भज मन चरण-कँवल अबिनासी ।

जेताइ दीसै धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी ॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी ॥
कहा भयो तीरथ ब्रत कीने, कहा लिए करवत कासी ?
कहा भयो है भगवा पहर्यां, घर तज भए संन्यासी ?
जोगी होइ जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करौं अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी ॥२॥

मन रे परसि हरि के चरण ।

सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरण ।
जिण चरण प्रहलाद पाले, इन्द्र-पदवी धरण ॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण ।
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिख सिरी धरण ॥

हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०
७१६५
(पुस्तकालय)
इलाहाबाद

जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीला करण॥
जिण चरण गोबरधन धरयो, इन्द्र को ग्रब हरण।
दासी 'मीरां' लाल गिरधर, अगम तारण-तरण॥३॥

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर बदन कमल-दल लोचन, बाँकी चितवन मँद मुसकानी॥
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण-कँवल 'मीरां' लपटानी॥४॥

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छानै कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल॥
कोई कहै मुँहघो कोई सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल॥
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल।
'मीरां' कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम कौ कोल॥५॥

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जाणूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागे डार॥
भौ-सागर अति जोर कहिये, अनन्त ऊंडी धार।
राम-नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार॥ ६॥

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकट, मेरो पति सोई॥

छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठि-बैठि, लोक--लाज खोई॥
अंसुअन जल सींचि-सींच, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो वेल फैल गई, आणँद-फल होई॥
भगति देखि राजी हुई, जगति देख रोई।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर, तारो अब मोई॥ ७॥

मैने राम रतन धन पायो।

बसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम को पूंजी पाई, जग में सबै खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर ना लेवै, दिन-दिन बढत सवायौ॥
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयौ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ॥ ८॥

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मनारे।

बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झनकार रे॥
बिनि सुर राग छतीसूं गावै, रोम-रोम रँग सार रे।
सील सतोख की केसर घोली, प्रेम-प्रीत पिचकार रे॥
उड़त गुलाल लाल भयो अम्बर, बरसत रग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये है, लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कँवल बलिहार रे॥ ९॥

६—केशवदास

आचार्य केशवदास का जन्म सं० १६१२ में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण पं० कृष्णदत्त के पौत्र एवं काशीनाथ के पुत्र थे। इन्हें ओरछा-नरेश रामसिंह के अनुज इन्द्रजीतसिंह अपना गुरु मानते थे। इन्द्रजीत-सिंह ने इन्हें २१ गाँव बड़े आदर के साथ दिये थे। ये हिन्दी के कवियों में राजसी वातावरण में रहने वाले कवियों में प्रधान माने गये हैं। कहते हैं कि राजा बीरबल के द्वारा इन्होंने इन्द्रजीत का जुर्माना माफ़ करा दिया था। बीरबल ने प्रसन्न होकर इन्हें एक ही छन्द पर, जिसके अन्तिम दो पद ये हैं—

"रविके नरनाह बली बलवीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दे करता पन आपन ताहि दियो करतार दुहूँ करतारी॥"

छह लाख रुपये दिये थे और यथेच्छ माँगने को कहा था। आप संस्कृत के बड़े प्रकाण्ड पंडित और काव्य शास्त्र के आचार्य थे। आपकी कविता बड़ी ही उच्चकोटि की तथा क्लिष्ट होती है। इसीसे महाकवि देव ने इनको 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है। इनकी कविता की गूढ़ता के विषय में प्रसिद्ध है—

"कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई॥"

आचार्य केशव वृद्धावस्था में भी रसिक बने रहे थे। आपने एक बार अपने बालों की सफ़ेदी देखकर बड़े पश्चात्ताप पूर्वक कह ही तो डाला—

"केशव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाँय॥"

आपकी कविता गूढ, अर्थ गाम्भीर्य पूर्ण और काव्य सम्बन्धी पाडित्य की द्योतक है। कही-कही भाषा मे सरसता भी है। छन्दशास्त्र मे भी आप पूर्ण रूप से कुशल थे। आपकी कविता में जितने छन्द पाये जाते है, उतने किसी कवि की कविता मे नहीं मिलते।

आपके बनाये ग्रन्थो मे रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित्र, जहाँगीर-जसचन्द्रिका और विज्ञान गीता तो उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त आपके ही बनाये रामालंकृत मजरी, रत्न बावनी और नखशिख उपलब्ध नहीं है। आपका देहावसान सं० १६७४ वि० के लगभग हुआ था।

(परशुराम-सम्वाद 'रामचन्द्रिका' नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है।)

परशुराम-सम्वाद

विश्वामित्र बिदा भए, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिलो फौज को, परशुराम अकुलाइ॥ १॥
मत्तदंति अमत्त ह्वै गए, देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव, दुन्दुभी नहि बज्जहीं॥
डारि डारि हथ्यार शूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि बेषन सज्जहीं॥ २॥
वामदेव ऋषि सों कह्यो परशुराम रणधीर।
महादेव को धनुष यह को तोरेउ बलवीर॥ ३॥

वामदेव—महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।
"तोरेउ रा" यह कहत ही, समझेउ रावण राज॥ ४॥

परशुराम—"वर बाण शिखीन अशेष समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहि की भरिहौं।
भल भूजि कै राख सुखै करकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
शिव कंठ के कंठन को कठुला,
दशकंठ के कंठन को करिहौं॥ ५॥

परशुराम—यह कौन को दल देखिये,
बामदेव—"यह राम को प्रभु लेखिये॥"

परशुराम—"कहि कौन राम ? न जानियो ।"

वामदेव—"शर ताड़ुका जिन मारियो" ॥ ६ ॥

परशुराम—"ताड़ुका संहारी, तिय न विचारी
कौन बड़ाई ताहि हने ?"

वामदेव—"मारीच हुते संग, प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गने ।
करि क्रतु रखवारी, गुरु सुखकारी,
गौतम की तिय शुद्ध करी ।
जिन रघुकुल मंड्यो हर धनु खड्यो,
सीय स्वयम्बर माँझ बरी ॥ ७ ॥

परशुराम—"हरहू हो तो दंड द्वै, धनुप चढ़ावन कष्ट ।
देखो महिमा काल की, कियो सो नर शिशु नष्ट ॥ ८ ॥
"बोरों सबै रघुवंश कुठार की,
धार मे बारन बाजि सरत्थहिं ।
बाण की वायु उड़ाइ कै लच्छन,
लच्छ करौ अरिहा समरत्थहि ॥
रामहि बाम समेत पठै बन,
कोप के भार में भूँजौ भरत्थहि ।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ,
तो आज अनाथ करौं दसरत्थहि ॥९॥
राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै ।
गहे भरत को हाथ, आवत राम बिलोकिये ॥१०॥

परशुराम—"अमल सजल घनश्याम वपु केशौदास,
चन्द्र हू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है।
कोमल कमल दल दीरघ बिलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है॥
बालक बिलोकियत पूरण पुरुष-गुण,
मेरो मन मोहियत ऐसो एक याम है।
बैर मानि कामदेव को धनुष तोरो इन,
जानत हों बीस बिसे राम वेष काम है" ॥११॥

भरत— "कुशमुद्रिका समिधै स्त्रुवा कुश और कमंडल को लिये।
कर मूल शर धन तर्कसी भृगुलात-सी दरसे हिए॥
धन-बाण तीक्ष्ण कुठार केशव मेखला मृगचर्म सो।
रघुबीर! को यह देखिये रसवीर सात्विक धर्म सो।" ॥१२॥

राम— "प्रचण्ड है हयाधिराज दण्ड मान जानिये।
अखण्ड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिये॥
अदेव देव जे अभीत रक्षमान लेखिये।
अमेय तेज, भर्ग भक्त, भार्गवेश देखिये" ॥१३॥

परशुराम—"सुनि रामचन्द्र कुमार! मन वचन कीर्ति उदार॥"

राम— "भृगु-वंश के अवतंश! मन-वृत्ति है कयहि अंश॥१४॥

परशुराम—तोरि शरासन शंकर को,
शुभ सीय स्वयवर माँझ वरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा,
मन मेरियो नेक न शंक करी"॥

राम— "सो अपराध परो हम सों, अब,
क्यों सुधरै तुमहूँ धौं कहो।"
परशुराम—"बाहु दै दोऊ कुठारहिं केशव,
आपने धाम को पंथ गहो" ॥१५॥

राम— "टूटै टूटन हार तरु, वायुहि दीजत दोष।
त्यो अब हरि के धनुष को, हम पर कीजत रोष ॥
हम पर कीजत रोष काल-गति जान न जाई।
हौनहार ह्वै रहै, मिटै मेटी न मिटाई ॥
होनहार ह्वै रहै, मोह मद सबको छूटै।
होइ तिनुका बज्र, बज्र तिनुका ह्वै टूटै" ॥ १६ ॥

परशुराम—"केशव हैहय राज को माँस,
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
ता लगि मेद महीपन को घृत,
घोरि दियो न सिरानो हियो रे ॥
मेरी कह्यो करि मित्र कुठार,
जो चाहत है बहु काल जियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहुँ तू,
रघुवंश को शोन-सुधा न पियो रे" ॥ १७ ॥
भरत—'बोलत कैसे भृगुपति ! सुनिए,
सो कहिए तन मन बनि आवौ।
आदि बड़े हो बड़प्पन राखो,
जाते तुम सब जग यश पावौ ॥

चंदन हूँ में अति तन घसिए,
आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति संहारे,
सो यश लै किन युग-युग जीजै" ॥ १८ ॥

परशुराम—"भली कही भरत्थ है उठाय आगि अंग ते।
चढ़ाउ चोपि चाप आय बाण लै निषङ्ग ते ॥
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहि राम लै छुड़ाइ कै" ॥ १६ ॥
लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ॥ २० ॥

राम—भगवंतन सौं जीतिए, कबहु न कीने शक्ति।
जीती एकै बात में, केवल कीने भक्ति ॥ २१ ॥
जब हयो है हयराज इन बिन छत्र क्षिति मंडल करयो।
गिरि बेध षटमुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हरयो ॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वत-नन्दिनी।
वह रेणका तिय धन्य धरणी में भई जग-वन्दिनी ॥२२॥

परशुराम—"सुनु राम शील समुद्र। तव बन्धु हैं अति क्षुद्र।
मम वाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप" ॥२३॥

शत्रुघ्न—"हौं भृगुनन्द बली जग माही।
राम बिदा करिए घर जाहीं ॥
हौ तुम सो फिरि युद्धहि माँड़ौं।
क्षत्रिय-वंश को बैर लै छाँड़ौं" ॥ २४ ॥

परशुराम—यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
कह रामहिं लै घर जाहु अबै ॥
इन पै जग जीवत जो बचि हौं।
रण हौ तुमसौ फिरि कै रचिहौं॥२५॥

निज अपराधी क्यों हतौ, गुरु अपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहि सो रण माँड़ि ॥२६॥

भूतल के सब भूपन को,
मद भोजन तो बहु भाँति कियोई।
मोद सो तारकनन्द को मेद
पछयावर पान सिरायो हियोई।
खीर षड़ानन को मद केशव,
सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कण्ठ को शोणित
पान को चाहै कुठार कियोई ॥२७॥

लक्ष्मण—"जिनको हि अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनकौ किमि निग्रह चित्त परै ॥
जिनके जग अच्छत शीश धरै।
तिनकौ सच्चत कौन करै ॥२८॥

परशुराम—"हाथ धरे हथियार सबै तुम शोभत हौ।
मारन हारहि देखि कहा मन चोभत हो ॥
क्षत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ।
कौटि करौ उपचार न कैसेहु मीचु बचौ ॥२९॥

लक्ष्मण—"क्षत्रिय हू गुरु लोगन के प्रतिपाल करैं।
भूलिहु तौ तिनके गुण औगुण जो न धरैं॥
तौ हमको गुरु दोष नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमही सुख पाइ हती॥३०॥

परशुराम—"लक्ष्मण के पुरिषान कियो
पुरुषारथ सो न कह्यो परई॥
वेष बनाइ कियो बनितान को
देखत केशव ह्यो हरई॥
क्रूर कुटार निहारि तजै फल,
ताको यहै जो हियो जरई।
आजु ते केवल तोको महाधिक
क्षत्रिन पै जो दया करई॥३१॥

तब एक विंशति वेर मे, बिन क्षत्र की पृथिवी रची।
बहु कुण्ड शोणित सो भरे पितु तर्पणादि क्रिया सची॥
ऊबरे जे क्षत्रिय क्षुद्र भूतल शोधि शोधि सँहारिहौ।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाड़िहुँ धर्म निर्दय पारिहौ॥३२॥

राम—"भृगु-कुल-कमल-दिनेश सुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यो चलिहै इन शिशुन पै, डारत हौ यशभार॥३३॥

परशुराम—"राम सुबन्धु सँभारि, छोड़त हौं शर प्राण हर।
देहु हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगि दै॥३४॥

राम—"सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप विशिष अशेषन की जो अग्नि॥

सब विशिष छाड़ि सहिहौं अखण्ड ।
हर धनुष करयौ निज खण्ड खण्ड" ॥३५॥

परशुराम—"बाण हमारेन के तन त्राण,
विचारि विचारि विरंचि करेहै ।
गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक,
जे जग दीन सुभाव भरे है ।
राम कहा करिहौं तिनको
तुम बालक देव अदेव डरे हैं ।
गाधि के नन्द तिहारे गुरू
जिनते ऋषि वेष किए उबरे है ॥३६॥

राम—"भगन भयो हर-धनुष शाल तुमको अब शालै ।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईश आसन ते चालै ॥
सकल लोक संहरहु शेष शिरते धर डारै ।
सप्त सिन्धु मिलि जाहिं होहि सब ही तम भारै ॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुड़ि जाहिं वरु ।
भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियौ शरासन युक्त शरु ॥३७॥

राम राम जब कोप करयोजू ।
लोक लोक भय भूरि भरयोजू ॥
महादेव तब आपुन आये ।
रामदेव दोऊ समुझाए ॥३८॥

महादेव को देखि कै, दोऊ राम विशेष ।
कीन्हों परम प्रणाम उन आशिष दियो अशेष ॥३९॥

महादेव—"भृगुनन्दन सुनिये, मन महँ गुनिए, रघुनन्दन निर्दोषी।
निजु ये अविकारी सब सुखकारी सब ही विधि संतोषी।
ऐके तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो, धनुष जो टूट्यो, मैं तन मन सुख पायो ॥४०॥

तुम अमल अनन्त अनादि देव,
नहि वेद बखानत सकल भेव।
सबको समान नहि बेर नेह,
भव भक्तन कारन धरत देह।
अब आपनपौ पहिचान विप्र,
सब करहु आगि लो काज क्षिप्र।
तब नारायण को धनुप जानि,
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ॥४१॥

नारायण को धनु बाण लियो,
ऐंच्यो हँस देवन मोद कियो।
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनो,
त्रैलोक्य कँप्यो भय मानि घनो।
दिग्देव दहे बहु बात बहे,
भूकम्प भये गिरिराज ढहे।
आकाश विमान् अमान छए,
हा हा सबही यह शब्द रए ॥ ४२ ॥

परशुराम—जग गुरु जान्यो, त्रिभुवन मान्यौ।
मम गति मारौ, हृदय बिचारौ ॥ ४३ ॥

विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्यों ही कियो, परशुराम गति भंग ॥ ४४ ॥

सुरपुर गति भानी, शासन मानी,
भृगुपति को सुख भारो।
आशिष रस भीने सब सुख दीने,
अब दशकंठहिं मारो ॥ ४५ ॥

सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीनी लात।
भृगु-कुल-पति की गति हरी, मनो सुमिर वह बात ॥४६॥

ताड़का तारि सुबाहु संहारि कै,
गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हरि को हँसि कै,
सब देव अदेव हुते सब हारे॥
सीतहिं व्याह अभीत चल्यो,
गिरि गर्व चढ़े भृगुनन्द उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै,
रघुनन्दन अवधपुरी पगु धारे ॥४७॥

७—रसखान

रसिक शिरोमणि रसखान दिल्ली के पठान थे। एक दोहे में इन्होंने अपने को बादशाही खानदान का बतलाया है। आपका जन्म सम्वत् १६१५ के लगभग माना जाता है। ये गोस्वामी विट्ठलनाथजी के प्रिय शिष्य थे। मुसलमान होते हुए भी ब्रजभाषा में आपकी बहुत-सी रचनाएँ उच्च-कोटि की हैं। बाह्य आडम्बर से अर्थ गाम्भीर्य और भाव प्रबलता को धक्का कहीं नहीं लगा है। आपकी भाषा सरल और प्रसाद-गुण पूर्ण है।

रसखानजी का चरित्र 'दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' नामक ग्रन्थ में मिलता हैं। ये श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी रचित पुस्तकों में सुजान, रसखान और प्रेम वाटिका में प्रेम का नामोल्लेख मिलता है। मुसलमान कवि होते हुए भी रसखान झूठ बोलने के बहुत विरोधी थे।

आपकी रचना सवैया, घनाक्षरी, दोहे तथा सोरठों में हुई है।

(१) कृष्ण-महिमा

(१)

मानुस हौं तो वही रसखानि, बसों बृज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौ तो कहा बस मेरौ चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौ तौ वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हो तो बसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौ॥
रसखान कबौ इन आँखिन सों बृज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौ॥

(३)

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी वनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काऊ की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
गाइयो तान, जमाइयो नेह, रिझाइयो प्रान, चराइयो गैया॥

(४)

सोहत है चँदवा सिर मोर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल विराजति जैसी हिये वन माल लसी है॥
रसखानि बिलोकति बौरी भई दृग मूँदि कैं ग्वाल पुकारि हँसी है।
खोलिरी घूंघट खोलों कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है॥

(५)

सेस, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि, अनन्त अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै जड़ मूढ हिये रसखानि कहावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछियाँ भर छाछि पै नाच नचावैं॥

(६)

तेरी गलीन में जा दिन ते निकसे मनमोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सो कौनसी बात चलाइकै जो नहि नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझि है नेकु तो रीझि कै क्यों बनवारि रिझावत।
बावरी जो पै कलङ्क लग्यौ तौ निसंक ह्वै क्यो नहिं अंक लगावत॥

(७)

दानी भये नये माँगत दान हो जानि है कंस तो बन्धन जै हो।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दै हो॥
रोकत हो बन में रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पै हो।
जैहौ जो भूषन काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकै हो॥

(८)

मोर पखा सिर ऊपर राखिहों गुंज की माल गरे पहिरोंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरोंगी॥
भावतौ वोही मेरौ रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करोंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरोंगी॥

(९)

गावैं गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥

जोगी जती तपसी अरु सिद्धि निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछि पै नाच नचावत॥

(१०)

शंकर से सुर जाहि भजै चतुरानन ध्यान में धर्म बढ़ावै।
नेक हिये में जो आवत ही रसखानि महाजड़ मूढ़ कहावै॥
जा पर सुन्दर देव बधू नहिं वारत प्रान अबार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछि पे नाच नचावैं॥

(११)

धूर भरे अति शोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनी बाजती पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखानि बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयौ माखन रोटी॥

(१२)

गोरज बिराजै भाल लहलही वनमाल।
आगे गया पाछे ग्वाल गावैं मृदु तान री॥
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर-मधुर तैसी।
बंक चितवनि मंद-मंद मुसकानि री॥
कदम विटप के निकट तटनी के आय।
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री॥
रस बरसावै तन तपन बुझावें नैन।
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री॥

(१३)

ग्वालन संग जैबो न ऐबो सुगायन संग।
हेरि तानि गैबो हा हा नैन फरकत हैं॥
ह्याँ के गज मोती माल वारौ गुंज मालन पै।
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत है॥
गोबर को गारौ सुतो मोहि लगै प्यारो कहा।
भयौ महल सोने को जटित मरकत है॥
मंदर ते ऊँचे यह मन्दिर है द्वारिका के।
ब्रज के खरक मेरे हिये खटकत है॥

(१४)

प्रान वही जु रहैं रीझि वापर रूप वही जिहि वाहि रिझायौ।
सीस वही जिन वै परसे पद अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायौ।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि' री भाव वही जु वही मनभायौ॥

(१५)

आपनो सो ढोटा हम सबही को जानत है।
दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं॥
ते तौ रसखानि, अब दूर तैं तमासो देखैं।
तरनि तनूजा के निकट नहि आवही॥
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा।
हितू जेऊ आये ते ये लोचन दुरावहीं॥
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली पर।
मेरे बनमाली कौन काली ते छुड़ावहीं॥

८—बिहारीलाल

महाकवि बिहारीलाल का जन्म सं० १६६० के लगभग ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर में माना जाता है। कुछ लोग इन्हे महाकवि केशव का पुत्र मानते हैं। इनका बाल्यकाल अपनी जन्मभूमि (बुन्देलखण्ड) मे व्यतीत हुआ और यौवन अपनी ससुराल मे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसिह (महाराज जयसिह) के आश्रय में रहते थे। इन्ही के कहने पर इन्होने सात सौ के लगभग दोहे रचे, जो इनकी सतसई मे संग्रहीत है। प्रवाद है कि बिहारी को प्रत्येक दोहे के लिए एक अशर्फी पुरस्कार मिलता था। इतने बडे कवि के लिए ये पुरस्कार कुछ भी नही था।

बिहारीलाल ने जैसी शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा लिखी है, वैसी कदाचित अन्य किसी भी कवि ने नही लिखी। आपकी शैली सरल, स्पष्ट और स्वाभाविक है। आपका हिन्दी-साहित्य मे बहुत ऊँचा स्थान है। हिन्दी के नव रत्नों में आप गिने जाते है। कवि को ससार के विभिन्न विषयो (ज्योतिष, वैद्यक, सभा चातुर्य, दार्शनिक तत्व, पशु-पक्षियो का स्वभाव आदि) का अच्छा ज्ञान था—यह सतसई के दोहों से स्पष्ट प्रकट होता है।

आपका देहावसान स० १७२० विक्रमी के लगभग माना जाता है। आपकी सतसई से निम्न दोहे उद्धृत किये गये है, जिनसे आपका पांडित्य प्रकट होता है।

दोहा

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोय।
बसति सुचित्त अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होय ॥१॥

मोर मुकट की चन्द्रकनि, यों राजत नँद नंद।
मनु ससि सेखर के अकस, किय सेखर सत चंद ॥२॥

प्रलय करन बरसन लगे, जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हरयो हरषि, गिरिधर गिरिधर हाथ ॥३॥

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलौने गात।
मनो नील मणि शैल पर, आतप परयो प्रभात ॥४॥

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा 'बिहारीलाल' ॥५॥

हौं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँचसो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियै जहाँ ॥६॥

मोहूँ दीजे मोष, ज्यौं अनेक अधमनि दियो।
जो बाँधे ही तोष, तौ बाँधिय अपने गुननि ॥७॥

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए, आजु-काल्हि के दानि ॥८॥

अधर धरत, हरि के परत, ओठ, दीठ, पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष छबि होति ॥९॥

जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितो, भरिये जितो सनेह ॥१०॥

पावस घन अँधियार मैं, रह्यौ भेद नहिं आन।
राति-दिवस जान्यौ परै, लखि चकई-चकवान ॥११॥
कैसे छोटे नरन तैं, सरत बड़नि के काम।
मढ़ो दमामा जात है, कहुँ चूहे के चाम ॥१२॥
जगत जनायौ जिहि सकल, सो हरि जान्यौ नाहि।
ज्यौं आँखिन सब देखियै, आँखि न देखी जाहि ॥१३॥
दुसह दुराज प्रजान में, क्यों न करै दुख-द्वन्द।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि-चन्द ॥१४॥
घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जाँचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय ॥१५॥
बुरौ बुराई जो तजै, तौ मन खरौ मकात।
ज्यौं निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपात ॥१६॥
बढ़त-बढ़त संपति-सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥१७॥
संगति सुमति न पावई, परे कुमति के धंध।
राखौ मेल कपूर मैं, हींग न होय सुगंध ॥१८॥
को कहि सकै बड़ेन सो, लखै बड़ी यै भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारिन वै फूल ॥१९॥
चले जाहु ह्याँ को करै, हाथिन कौ व्यौपार।
नहि जानत यहि पुर बसैं, धोबी और कुम्हार ॥२०॥
इहिं आसा अटक्यो रह्यौ, अलि गुलाब के मूल।
अइहै बहुरि बसंत ऋतु इन डारिन वे फूल ॥२१॥

मरत प्यास पिंजरा परयौ, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलि की बेर ॥२२॥

कनक कनक तैं सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाए बौराय ॥२३॥

बड़े न हूजै गुननि-बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सौं कनक, गहनौ गढ़ो न जाय ॥२४॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम-रंग, त्यों त्यों उज्जल होय ॥२५॥

तंत्री-नाद कवित्त-रस्त, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥२६॥

नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानति हौ, नदित करी, यह दिसि नंदकिशोर ॥२७॥

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहै नटि जाइ ॥२८॥

कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगतु तपोवन-सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ ॥२९॥

धुरवा होहिं न अलि, उठै धुऔं धरनि-चहुँकोद।
जारत आवत जगत कौं, पावस-प्रथम पयोद ॥३०॥

इन दुखिया अखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनैं न देखते, अनदेखैं अकुलाहिं ॥३१॥

९—सूदन

कविवर सूदन मथुरा के रहने वाले थे। ये जाति के माथुर वैश्य थे। इनके पिता का नाम बसन्त था। ये भरतपुर के महाराज बदनसिंह (बदनेश) के पुत्र सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। सुजानसिंह बड़े सदाचारी तथा बलिष्ठ पुरुष थे। इन्होंने अपने बल और पराक्रम की धाक चारों ओर बैठा दी थी। अपने पुत्र जवाहरसिंह सहित सुजानसिंह ने मुगलों से कई बार टक्कर लेकर अपने बल का परिचय दिया था। उस समय दिल्ली में मुगलों का साम्राज्य था और मुगलों का आतंक छाया हुआ था। उत्तरी भारत के सूर्य तथा चन्द्र-वंशी क्षत्रिय निर्जीव से हो रहे थे तो कविवर सूदनजी के चरित्र नायक सुजानसिंहजी ने ही अपने बल और पुरुषार्थ का सबको परिचय देकर क्षत्रिय-जाति का संकट दूर किया था। इनकी वीरता की घटनाएँ ऐतिहासिक आधार पर आधारित हैं।

कवि शिरोमणि सूदन का ही सौभाग्य था कि उन्हें ऐसा चरित्र नायक मिला जिससे उन्होंने 'सुजान-चरित्र' नामक ग्रन्थ बना डाला। इस ग्रन्थ के प्रत्येक पद से वीरभाव टपकता है। युद्ध, उत्साह पूर्वक भाषण, एवं उमंगों का समीचीन चित्रण सर्वत्र दर्शनीय है।

सूदनजी की कविताओं में पंजाबी, खड़ी बोली और राजपूतानी तथा अनेक बोलियों का पुट मिलता है। इसके सिवा गढन्त के शब्द हैं, जिनकी तोड़-मरोड़ करने में कविराज ने कमाल कर दिखाया है। जो हो, इन दोषों से मुक्त स्थलों पर सूदनकी कविता बड़ी मर्मस्पर्शी है।

अनेक छंदों का व्यवहार इनके पिंगल ज्ञान का परिचायक है। सब से बडी विशेषता तो सूरजमल (सुजानसिंह) को राष्ट्रीय-वीर के रूप में चित्रित करने मे है।

प्रस्तुत पुस्तक में जो प्रसग लिया गया है। वह सुजानसिंह के दूत रूपराम पुरोहित एवं इन्दौर राज्य के संस्थापक श्री मल्हारराव होलकर की वार्तालाप का वर्णन दिखाया गया है।

सूदन की शैली में दुरूहता तो अवश्य है, पर भावों पर विचार करने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कवि की प्रतिभा अवर्णनीय है, वीररस का स्रोत उमडा पडता है, जो पाठको को देशभक्ति और प्रेम की ओर अग्रसर कर रही है।

(सुजान-चरित)

दोहा

रूपराम के बचन सुनि बोल्यो राउ मलार
सत्ति सत्ति तैंने कह्यो ब्रजपति के ब्यौहार ॥
जो धरनी बरनी जु तैं रूपराम सविलास।
ताहि देखिहै नैन सौं सब दक्खिन तो पास ॥
कछु उमाह्यो हो हमैं कछू बुलाए साहि।
बड़ गूजर को मारिवौ सुनि आए भुवगाहि ॥

कवित्त

गुज्ज भुज्ज द्रविड़ तिलंग बग गौड़ गढ़ा,
मंडला उड़ीसा लै बघेल औ बुन्देलखण्ड।
झारखण्ड मगध मलार गङ्गापार हांग,
उमट उचाट मालुया मैं न राख्यो चंड ॥
हाड़ौती ढुंढाहर भदावरि दिलीपति के,
सहित उजीर उमराई राय पाये दण्ड ॥
सेवा संभा साऊ राम राजा के जलेबदार,
एक ब्रज देश बदनेस ही रह्यो अदण्ड ॥

संयुत्ता छन्द

पुनि यौं कह्यो सुमलार नै, थल वै सबै सुनिहारनै ॥
लखि रूपराम विवेक कैं, बद जानि तू अब नेक कैं ॥

यह मैं कहौं निज टेक कैं, ब्रज-भूमि दक्खिन एककैं ॥
तब दो करारहिं लेहिगे। ब्रजराज दाम न देहिगे ॥
पट पीत की उन ओट है। इत आपु शंकर जोट है ॥
दुहुँ की ध्वजा फहराँइगी, रन-दुन्दुभि घहराइगीं ॥
इन के उतै ठहराहिंगी। ठहराइकै भहराहिंगी ॥
तब मामलति ह्वै जायगी, जुरि जंग कै ठहराइगी ॥
यह भापि राउ मल्हार ने, पुनि बोलि आप कुँवारने ॥
ठिंग देखि खण्डू सौं कही। अब कूच ही करनौ सही ॥
सजि आपुनी सब बाहिनी। धरमेत्र की अवगाहिनी ॥
मिलि जाहि मो करि आपनौ। लहि दाम संगहि थापनौ॥
अरु जो गहै हथियार कौं। पठराइये जमद्वार कौं ॥
दर-कूच मैं बन खूँदि कैं। पुनि साब्र की धरि रूँधि कै ॥
मथुरा थकी करि आपनी। करि हाथ थापउ थापनी ॥
बहु द्यौस कौ नहि काम है। ब्रज भूमि फेर मुकाम है ॥
धरि सीस आयसु बाप कौ। दल साजि खडू आपकौं ॥
असवार चार हजार सौं। किय कूच संग बहार सौं ॥
अति दीह डंकनु देन भौ। सुब मेव की पथ लेतु भौ ॥

छन्द विद्वनमाल

तब खंडू मेवात खूँदि कै, चल्यौ साधि कौं आयो ॥
सो सुनि कै महमूद आखबत आगे मिलिबे धायो ॥
खंडू सो महमूद आखबत मिलि कै यह ठहरायो ॥
आपुन करौ कूच होड़िल पै मैं मेवत पर आयो ॥

छन्द चपला

आवै है खंडू मेवातैं। रूपा ने भेजी ये बातैं॥
मल्लारे आयो ही जानौ। ठेलैना कीजौ जो ठानौ॥

छन्द सालिनी

खंडू धायौ भूमि मेवात आयौ
आयौ आयौ चारिहू ओर छायौ॥
मानो दावाग्नि होलै रिसायौ
मारयौ वारयौ सामुहैं जाहि पायौ॥
काहू गब्बै जाइ पब्बै बसायौ
दैकै दामैं धाम काहू बचायौ॥
लूट्यौ कूट्यौ मेव देसै भगायौ
ताकै आगे दुगाऊ दार खायौ॥

दोहा

आयौ राउ मलार-सुत, सुनि सुजान को नंद।
जुद्ध-काज उद्यत भयौ, अङ्ग अङ्ग आनन्द॥
यह सुनि कै सूरज वली उतमैं राउ मलार।
दोउन कै चिंता बढ़ी जाने पूत जुझार॥

१०—दीनदयाल गिरि

इनका जन्म शुक्रवार बसन्त पचमी सवत् १८५४ का है। ये काशी के एक पाठक कुल में उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था से ही आप अनाथ हो गये। देहली-विनायक स्थान के अधिकारी महन्त कुशगिरि ने इनका पालन पोषण किया। इनकी मृत्यु के पश्चात् दीनदयालजी ही इनकी गद्दी के अधिकारी बने। इनके गुरू बहुत सा कर्ज छोड मरे थे, फलतः बहुत-सी जायदाद नीलाम हो गई। पश्चात् ये मौठली गॉव जो देहली-विनायक के पास है—वाले मठ मे रहने लगे। आपकी लिखी निम्न-पुस्तके मिलती हैं:—

१—अन्योक्ति कल्पद्रुम २—अनुराग वाटिका ३—वैराग्य दिनेश ४—विश्वनाथ नवरत्न ५—दृष्टान्त तरगिणी। अन्योक्तियों के लिखने से आपका हिन्दी साहित्य में बडा नाम है। बाबाजी ने सस्कृत कवियों के भावो को अपनाया है। इनकी भाषा प्रांजल, पद विलास मनोहर एव रुचिकर है। लौकिक विषयो पर आपकी अन्योक्तियॉ अत्यन्त मनोमुग्धकारी हैं लोकोक्तियो के लिखने में आप अद्वितीय माने जाते हैं। आपकी कविता मे बनारसी भाषा के प्रयोग हैं तथा कहीं-कहीं खड़ी भाषा के शब्द भी मिलते है।

(अन्योक्तियाँ)

नीरद

दीजै जीवन जलद जू दीन द्विजन को देखि ।
इनको आसा रावरी लागी अहै बिसेखि ॥
लागी अहै बिसेखि देहु कुल कीरत छैहै ।
या चपला है चञ्चला लला धौं कित को जैहै ॥
बरने दीनदयाल आप जग में जस लीजै ।
परम धम्म उपकार द्विजन को जीवन दीजै ॥ १ ॥

करिये सीतल हृदय वन सुमन गयौ मुरझाय ।
सुनो बिनय घनश्याम हे शोभा सघन सुहाय ॥
शोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै ।
नीलकण्ठ प्रिय पालि सरस जग में जस लीजै ॥
बरनै दीनदयाल तृषा द्विजगन की हरिये ।
चपला सहित लखाय मधुर सुर कानन करिये ॥ २ ॥

भीखन ग्रीषम ताप से भयो झाँवरो छीन ।
है यह चातक डावरो अनुग रावरो दीन ॥
अनुग रावरो दीन लीन आधीन तिहारे ।
कहै नाम बसु जाम रहै घनश्याम निहारे ॥
बरनै दीन दयाल पालिये लखि तप तीखन ।
सरी सरोवर सिधु काहु इन माँगी भीख न ॥ ३ ॥

जग को धन तुम देत हौ गज के जीवन दान ।
चातक प्यासे रटि मरे ता पर परे पखान ॥

तापर परे बखान बानि यह कौन तिहारी।
सरित सरोवर सिंधु तजे इन तुमें निहारी॥
बरनै दीनदयाल धन्य कहिये यहि खग को।
रह्यो रावरी आस जन्म भरि तजि सब जग को॥ ४॥
आयो चातक बूँद लगि सब रस सरित बिसारि।
चहियत जीवन दानि! तिहि निरदै पाहन मारि॥
निरदै पाहन मारि पख्य बिनु ताहि न कीजै।
याहि रावरी आस प्यास हरि जग जस लीजै॥
बरनै दीनदयाल दुसह दुख आतप तायो।
तृषावंत हित पूर दूर तैं चातक आयो॥ ५॥
जिन ससिन को सींच तुम करी सु हरी बहारि।
तिनको दई न चाहिये हे घन! पाहन मारि॥
हे घन पाहन मारि भली यह कहो न वेदन।
गरलहु को तरुलाय न चाहिये निज कर छेदन॥
बरनै दीनदयाल जगत बसिबौ द्वै दिन को।
लेहु कलंक न कंद पालि दलि जिन ससिन को॥ ६॥
भूले अब घन! तुम कितें प्रथमे याको पालि।
लखत रावरी राह को सूखि गयो यह सालि॥
सूखि गयो यह सालि अहो अजहूँ नहिं आए।
दै दै नाहक नीर सिंधु में सुदिन गवाए॥
बरनै दीनदयाल कहा गरजत हो फूले।
समै न आए काम, काम कौने भ्रमि भूले॥ ७॥

चपला संगति तैं भयो घन ! तब चपल सुभाव ।
ता छिन ते बरखन लगे अमृत को तजि ग्राव ॥
अमृत को तजि ग्राव हनत को तुमैं निवारै ।
अहो कुसंग प्रचंड काहि जग में न बिगारै ॥
बरनै दीनदयाल रहैगि न है यह सचला ।
ता बस अजस न लेहु देहु चित है चल चपला ॥ ८ ॥
बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहि ।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमि है नाहि ॥
अंकुर जमि है नाहि बरष सत जो जल दैहै ।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीन दयाल न ठौर कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्यां तू बरखै ॥ ९ ॥

११—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्दजी के वंश में भारतेन्दु बाबू का जन्म संवत् १९०७ को काशी में हुआ। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास था। आपके माता-पिता का देहान्त बाल्यकाल मे ही हो गया था। अतः आपकी शिक्षा अधूरी रह गई। पश्चात् स्वाध्याय ही से हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बँगला, उर्दू, अंग्रेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

भारतेन्दुजी बचपन मे बडे प्रतिभा शाली व्यक्ति थे। पाँच वर्ष की अवस्था से ही आप कविता करने लगे थे। १७ वर्ष की अवस्था में तो आप अच्छी कविता करने लगे। भारतेन्दुजी अधिक काल तक जीवित न रह सके, केवल चौतीस वर्ष जीवित रहने पर भी आपने जो सेवा हिन्दी की की, इससे प्रसन्न होकर ही तत्कालीन हिन्दी-संसार ने आपको भारतेन्दु की पदवी से विभूषित किया।

भारतेन्दुजी आधुनिक हिन्दी के प्रवर्तक और जन्मदाता माने जाते हैं। आपने 'कवि वचन-सुधा और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक पत्र निकाले थे। गद्य और पद्य दोनों मे आपने रचनाएँ की थीं। आपके पद्य ब्रज भाषा और गद्य खडी बोली में हुआ करते थे। छोटे-बडे कुल मिलाकर आपने १७५ ग्रन्थ रचे, जिनमें से कुछ निम्नाङ्कित हैं:—

सत्य-हरिश्चन्द्र, मुद्रा राक्षस, अंधेरनगरी—नीलदेवी, भारत दुर्दशा इत्यादि।

भारतेन्दुजी जैसे उच्च-कोटि के कवि थे वैसे ही कवियों का आदर करने वाले भी थे। उनके यहाँ कवियों का जमघट रहता था। वे कवियों को पुरस्कृत करके सदैव प्रोत्साहित किया करते थे।

भारतेन्दुजी ने प्रेम, भक्ति, प्रकृति, देशप्रेम सम्बन्धिनी रचनाओं के अतिरिक्त राजभक्ति पूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं। आपने एक स्कूल को भी जन्म दिया था जो कि आज हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के नाम से विख्यात है। ६ जनवरी सन् १८८५ को आपका स्वर्गलोक हो गया। आप बड़े उदार तथा सहृदय व्यक्ति थे। आपकी मृत्यु पर सारे संसार ने शोक प्रकट किया तथा अंग्रेज़ी, उर्दू, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं के पत्रों ने भी आपके शोक में आँसू गिराये।

गङ्गा-महात्म्य

गंगा पतितन को आधार।

यहि कलि-काल कठिन सागरसों तुमहिं लगावत पार।

दरस-परस जल-पान किएते तारे लोक हज़ार॥

हरि-चरनारविंद-मकरन्दी सोहत सुन्दर धार।

अवगाहत नर-देव सिद्ध-मुनि कर अस्तुति बहुवार॥

'हरीचन्द' जन-तारिनि देवी गावत निगम पुकार॥

जयति कृष्ण पद-पद्म मकरंद रंजित
नीर नृप भागीरथ विमल जल-पताके।

ब्रह्म द्रव भूत आनन्द मन्दाकिनी
अलकनन्दे सुकृति कृति-विपाके॥

शिव-जटा-जूट-गह्वर-सघन-वन-मृगी
विधि-कमंडलु-दलित-नीर रूपे।

कपिल हुंकार भस्मी भूत निरयगत
स्पर्श तारित सगर-तनुज भूपे॥

जन्हु-तनया हिमालय-शिखर-निकर
वर भेद भजित इन्द्र हस्ति गर्वे।

असह धारा-प्रवाह वारि-निधि मानहृत
मिलित शतधा रचित वेग खर्वे॥

विविध मन्दिर गलित कुसुम-तुलसी-निचय
भ्रमर-चित्रित नवल विमल धारे।

सिद्ध-सीमंतिनी-सुकुच-कुंकुम-मिलत
हिलित रञ्जित सुगधित अपारे ॥
लोल कल्लोल लहरी ललित बलितबल
एक संगत द्वितिय तर तरगे।
झरित झर झर झिल्लि सरस झकार
वर वायु गत रव-वीन मान भगे॥
मकर-कच्छप-वक संकुलित जीवंजत्र
शीत पानीय तृष्णादि नाशे।
कलित कूजित सुकारंड-कलरव नाद
कोक नद कुमुद कल्हार काशे॥
निज महिम बल प्रबल अर्क सुत नर्क अभय
दूर कृत पतित-जन कृत पवित्रे।
पान मज्जन मरण-स्मरण दर्शन मान
निखिल अघ राशि नाशन चरित्रे॥
मुक्ति-पथ सोपान विष्णु-सायुज्य प्रद
परम उज्ज्वल श्वेत नीर जाते।
जयति यमुना-मिलित ललित गंगे
सदा दास 'हरिचन्द' जन पक्ष पाते॥
जयति जन्हुतनया सकल लोक की पावनी।
सकल अघ-ओघ हर-नाम उच्चार में,
पतित जन-उद्धरनि दुक्ख-विद्रावनी॥
कलि-काल कठिन गज गर्व खर्वित-करन,

सिहनी गिरि गुहागत नाद-श्रावनी ।
शिव-जटा-जूट जालाधिकृत वासिनी,
विधि कमण्डलु विमल रमनि मन-भावनी ॥
चित्र गुप्तादि के पत्र-गत कर्म्म विधि,
उलटि निज भक्त आनन्द सरसावनी ।
दास हरिचन्द भागीरथी त्रिपथगा,
जयति गंगे कृष्ण-चरन गुन-गावनी ॥

श्री गंगे पतित जानि मोहि तारौ ।
जो जस अबलौं मिल्यौ तुम्है, नहि सो जग में बिसारौ ॥
जेते तारे हीन छीन तुम अब लौं पतित अपारे ।
ते मेरे लेखे तृन ऐसे कहा गरीब बिचारे ॥
पाप अनेक प्रकार करन की बिधि कोऊ कहे जानै ।
हौ तो बदि बदि करौ अनेकन जेहि जम-चित्रहु मानै ॥
हम कहँ जो पै तारि लेहु जग-तारिनि नाम कहाई ।
'हरीचद' तो जस जग मानै नातरु बादि बड़ाई ॥

जै जै विष्णु-पदी श्री-गंगे ।
पतित-उधारनि सब जग-तारनि नव उज्ज्वल अंगे ॥
शिव-शिर-मालति-माल सरिस वर तरल तरंगे ।
'हरीचंद' जन उधरनि देवी पाप-भोग-भंगे ॥

पतित-उधारनी मैं सुनी ।
इक-बाजी खेलौ हमहूँ सों देखैं कैसी गुनी ॥

कबहुँ न पतित मिले जग गाढ़े ताही सों गायो सुनो।
'हरीचन्द' को जो तुम तारौ तो तारिनि-सुर-धुनो ॥

गंगा तुमरी साँच बड़ाई

एक सगर-सुत हित जग आई तार्यौ नर समुदाई।
इक चातक निज तृषा बुझावन जाचत घन अकुलाई ॥
सो सरवर नद नदी बारिनिधि पूरत सब झरलाई ॥
नाम लेन जल पियत एक तुम तारत कुल अकुलाई।
'हरीचन्द' याहीतें तो शिव राखी सीस चढाई ॥

१२—नाथूरामशंकर शर्मा

शंकरजी का जन्म संवत् १९१६ वि० की चैत्र शुक्ला ५ को हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ। आप १३ वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लगे थे। आपका हिन्दी के प्राचीन कवियों में स्थान है। पहले तो आप व्रज भाषा में बड़ी सुन्दर और गढ़ी हुई कविता करते थे। पीछे से आप खड़ी बोली में कविता करने लगे। वर्ण वृत्त की तरह मात्रिक और मुक्तक छन्दों में भी वर्णों की समान संख्या रखते थे, जो कि एक अपूर्व बात है। आप अपनी कविता में अन्त तक काव्य-सम्बन्धी इस बड़े कड़े नियम का निर्वाह करते रहे।

शंकरजी आर्यसमाज के अन्ध विश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के कट्टर विरोधी थे। आपकी रचनाओं में फबतियों और फटकार की भी कमी नहीं है। समस्या-पूर्ति करने में आप बहुत प्रगल्भ थे। काव्य के रसों पर भी आपका पूरा अधिकार था। भाव गाम्भीर्य, अनुप्रास और शब्दलालित्य आपकी कविता के विशेष गुण हैं। आपकी लिखित निम्न पुस्तकें प्रसिद्ध हैं:—

१—शंकर सरोज। २—अनुरागरत्न। ३—वायस विजय आदि।

आपका स्वर्गवास सं० १९८९ वि० की भादों वदि ४ को हुआ।

(१) पावस-वर्णन

शंकर देख ! विचित्र, सृष्टि-रचना शंकर की।
बोल ! किसे कब थाह, मिली संसृति-सागर की ॥
जड़, चेतन के खेल, मनोहर-दृश्य खरे हैं।
इनमें मंगल-मूल, निरे उपदेश भरे है ॥ १ ॥

इस प्रसंग के अंग, अखिल-विद्या के घर है।
अर्थ अमोघ-विशुद्ध, शब्द-अद्भुत-अक्षर है ॥
इसका अनुसन्धान, यथा-सम्भव जब होगा।
अनुभवात्मक-ज्ञान अन्यथा तब कब होगा ॥ २ ॥

स्वाभाविक-गुण शील, अन्य सब जीव निहारे।
पर मनुष्य को मंत्र, मिले जड़, चेतन, सारे ॥
ब्रह्म-शक्ति जिस भाँति, यथा-विधि सिखा रही है।
पावस के मिस दिव्य, निदर्शन दिखा रहो है ॥ ३ ॥

ऊपर को जल सूख, सूख कर उड़ जाता है।
सरदी से सकुचाय, जलद-पदवी पाता है ॥
पिघलावे रवि-ताप, धरा-तल पै गिरता है।
बार-बार इस भाँति, सदा हिरता फिरता है ॥ ४ ॥

पाय पवन का योग, घने घन घुमड़ाते है।
कर किरणो से मेल, विविध-रङ्गत पाते है ॥
समझो, जिसके पास, प्रकाश न जा सकता है।
क्या वह भौतिक भाव, रंग दिखला सकता है ॥ ५ ॥

चपला-चंचल-चाल दमकती, दुर जाती है।
वज्र-घात घन-घोर, गगन में पुर जाती है ॥
दोनो चल कर साथ, विषम-गति से आते हैं।
प्रथम उजाला देख, शब्द फिर सुन पाते हैं ॥ ६ ॥

जब दिनेश की ओर, ओर-स्फरने झड़ते हैं।
इन्द्रचाप तब अन्य, घने-घन पै पड़ते हैं ॥
नील अरुण के साथ, पीत छवि दिखलाते हैं।
हमको मिश्रित रंग, बनाना सिखलाते हैं ॥ ७ ॥

जब चादर सा अभ्र, गगन में तन जाता है।
दिव्य-परिधि का केन्द्र, इन्दु तब बन जाता है ॥
शशि का कुण्डल गोल, समझ में आया जब से।
बुध-मंडल ने वृत्त, विधान बनाया तब से ॥ ८ ॥

भूधर से सब श्याम, धवल धारा धर धाये।
घूम-घूम चहुँ ओर, घिरे गरजे झर लाये ॥
वारि प्रवाह अनेक, चले अवला पर दीखे।
इस विधि कुल्या, कूल बहाना हम सब सीखे ॥ ९ ॥

झावर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर सारे।
हिल-मिल एकाकार, हुए पर हैं सब न्यारे ॥
सबके बीच विराज, रहा पावस का जल है।
व्यापक इसकी भाँति, विश्व में ब्रह्म अचल है ॥१०॥

निरख नदी की बाढ़, वृष्टि पिछली पहँचानी।
समझे मेघ निहार, अवस बरसेगा पानी ॥

प्रकट भूमि की चाल, करे अस्तोदय रविका।
यों अनुमान-प्रमाण, मिला पावस की छविका ॥११॥

(२) ब्रह्मचर्य-महिमा

(महावीर हनुमान)

सुग्रीव का सुमित्र बड़े काम का रहा।
प्यारा अनन्य भक्त सदा राम का रहा॥
लंका जलाय काल खलों को सुझा दिया।
मारे प्रचण्ड दुष्ट दिया भी बुझा दिया॥
हनुमान बली वीरवरों में प्रधान है।
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान् है॥

(राजर्षि भीष्म पितामह)

भूला न किसी भाँति कड़ी टेक टिकाना।
माना मनोज का न कहीं ठीक ठिकाना॥
जीते असंख्य शत्रु रहा दर्प दिखाता।
शय्या शरों की पाय मरा धर्म सिखाता॥
अब एक भी न भीष्म बली-सा सुजान है।
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान् है॥

१३—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

कवि शिरोमणि पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' सनाढ्य ब्राह्मण-कुल-भूषण है। आपका जन्म निज़ामाबाद (आजमगढ) में वैशाख कृष्णा ३ संवत् १९२२ को हुआ। सिक्ख धर्मानुयायी होने के कारण आपके नाम में सिंह शब्द जुड़ा हुआ है। आपने अध्यापक के जीवन से प्रारम्भ कर फिर कानूनगो की परीक्षा देकर कानूनगो, रजिष्ट्रार कानूनगो इत्यादि पदों पर काम किया। सरकारी नौकरी से पेन्शन हो जाने के पश्चात् आप 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के हिन्दी-विभाग में कार्य करते हैं। आप सरल हृदय के भावुक कवि है, समाज सेवी हैं, एवं संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् है। अंग्रेज़ी के भी ज्ञाता है। आप संवत् १९८० मे चतुर्दश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद को सुशोभित कर चुके है।

हिन्दी के वर्तमान कवियों मे हरिऔधजी ही ऐसे है, जो खडी बोली और व्रज भाषा दोनो मे समान रूप से सफलतापूर्वक कविता कर सकते है। आपका 'प्रियप्रवास' खडी बोली का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उसमे संस्कृत-वृत्तो मे श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र का नवीन ढंग से चित्रण हुआ है। उसमे श्रीकृष्ण लोक-रक्षक रूप मे देखे जाते है। 'प्रियप्रवास' मे वात्सल्य और करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। आपकी लिखित पुस्तको मे नित्य के व्यवहार मे आने वाली भाषा में विविध विषयों पर सूक्तियाँ मिलती हैं। आपकी कविता मुहावरेदार होती है, जो एक दम हृदय पर प्रभाव डालती है। मुहावरो का आपसे बढ़कर अब

त्तक' प्रयोग किसी दूसरे कवि ने नहीं किया है। आपकी निम्न-लिखित पद्य पुस्तकें प्रसिद्ध हैः—

१—प्रियप्रवास। २—पद्यप्रमोद। ३—बोलचाल। ४—चुभते-चौपदे। ५—चोखे चौपदे। ६—रसकलश। कविता के अतिरिक्त आप गद्य के भी माने हुए लेखक है। ठेठ हिन्दी का ठाठ' नामक पुस्तक में साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, तो 'अधखिले फूल' और 'वेनिस का बाँका,' में संस्कृतगर्भित साहित्यिक भाषा का दिग्दर्शन कराया है। आपकी यह पुस्तक इन्डियन सिविल सर्विस (I.C.S.) परीक्षा के कोर्स मे भी है।

आपकी गद्य की प्रसिद्ध निम्नाङ्कित पुस्तके हैंः—

१—ठेठ हिन्दी का ठाठ। २—अधखिला फूल। ३—वेनिस का-बाँका। (अनुवादित अंग्रेज़ी से)

(१) गोचारण से प्रत्यागमन

(१)

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

(२)

विपिन-बीच विहंगम-वृन्द का
कल-निनाद समुत्थित था हुआ।
ध्वनिमयी-विविधा-विहगावली
उड़ रही नभ-मंडल मध्य थी॥

(३)

अधिक और हुई नभ लालिमा
दश-दिशा अनुरंजित हो गई।
सकल-पादप-पुञ्ज हरीतिमा
अरुणिमा विनिमज्जित-सी हुई॥

(४)

झलकने प्रति केलि-थली लगी
गगन के तल की यह लालिमा।
सरित औ सर के जल में पड़ी
अरुणता अति ही रमणीय थी॥

(५)

अचल-शृङ्ग--समुन्नत जा चढ़ी
किरन पादप-शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला
गगन पश्चिम-मध्य शनैः-शनैः॥

(६)

ध्वनिमयी करके गिरि कन्दरा
कलित-कानन कुञ्ज निकुञ्ज को।
क्वणित एक हुआ वर-वेणु भी
रविसुता कल कूल उसी समै॥

(७)

कियत कालहि में वन-बीथिका
विविध-धेनु विभूषित हो गई।
धवल--धूसर--वत्स--समूह भी
समुद था जिनके सँग सोहता॥

(८)

गगन के तल गोरज छा गई
दश-दिशा बहु शब्दमयी हुई।
विशद गोकुल के प्रति-गेह में
बह चला वर-स्रोत विनोदका॥

(९)

श्रुत हुआ स्वर ज्यों कल-वेणु का,
सकल-ग्राम समुत्सुक हो उठा।

हृदय-यंत्र निनादित हो गया,
तुरत ही अनियंत्रित भाव से ॥

(१०)

इधर गोकुल से जनता कढ़ी,
उमगती अति आनन्द में पगी।
उधर आ पहुँची बल-वीर की
विपुल–धेनु–विमंडित–मण्डली ॥

(११)

ककुभ-शोभित गोरज बीच से,
निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे।
कदन ज्यों करके दिशि-कालिमा,
कमलिनी-पति है नभ राजता ॥

(१२)

अतसि-पुष्प अलंकृत कारिणी,
सुछवि नील–सरोरुह–वर्द्धिनी।
नवल–सुन्दर–श्याम–शरीर की,
सजल-नीरद-सी कल-कान्ति थी ॥

(१३)

मुदित गोकुल की जन मण्डली,
जब ब्रजाधिप सम्मुख जा पड़ी।
निरखने मुख की छवि यों लगी,
तृषित-चातक ज्यों घन की घटा ॥

(१४)

इधर था इस भाँति समा बँधा,
उधर व्योम हुआ कुछ और ही।
अब न था उसमें रवि राजता,
किरण भी न सुशोभित थी कहीं॥

(१५)

अरुणिमा—जगती—तल—रंजिनी,
बहन थी करती अब कालिमा।
मलिन थी नव-राग-मयी-दिशा,
अवनि थी तमसावृत हो रही॥

(१६)

कर विदूरित लोचन-लालसा,
नव-पियूष पिलाकर कान को।
गुणमयी रसना करके गये,
स्वगृह को अवदर्शक-वृन्द भी॥

२—वर्षा-वर्णन

(१)

सरस-सुन्दर-सावन-मास था,
घन, घटा नभ थी घिर-घूमती।
विलसती बहुधा जिसमें रही,
छविवती-उडती-बक-पंगती॥

(२)

घहरता गिरि-सानु समीप था,
बरसता छिनि छू नव-वारि था।
घन कभी रवि अन्तिम-अशु ले,
वियत में रचता बहु चित्र था॥

(३)

नव प्रभा परमोज्ज्वल-लीकसी,
गति-मती कुटिला-फणिनी-सभा।
दमकती दुरती घन-अङ्क थी,
विपुल केलि-कला-खनि दामिनी॥

(४)

विविध रूप धरे नभ मे कभी,
विहरता वर-वारिद-व्यूह था।
बरसता बहु-पावन वारि था,
वह कभी सरसा करके रसा॥

(५)

सलिल-पूरित थी सरसी हुई,
उमड़ते पड़ते सर-वृन्द थे।
करसु लावित कूल-समस्त को,
सरित थी स-प्रमोद-प्रवाहिता॥

(६)

अवनि के तल थी अति शोभिता,
नवल कोमल-श्याम-तृणावली।

नयन-रंजन थी करती महा,
अनुपमा तरु-राजि-हरीतिमा ॥

(७)

हिल, लगे मृदु मंद-समीर के,
सलिल-बिन्दु गिरा सुठि अंक से।
महि न थे किसका मन मोहते,
जल धुले दल पादप-पुंजके ॥

(८)

विपुल मोर लिए बहु मोरिनी,
विहरते सुख से स-विनोद थे।
जटित-नीलम-पुच्छ प्रभाव से,
मणि-मयी करके वन-मेदिनी ॥

(९)

बन प्रमत्त-समान पपीहरा,
कथन था करता मुख पी कहाँ।
लखि वसत-विमोहनि मंजुता,
पिक सदा उठता घन कूक था ॥

(१०)

सरव पावस-भूप प्रताप जो,
सलिल में कहते बहु भेक थे।
विपुल झींगुर तो थल में उसे,
धुन लगा करते नित गान थे ॥

(११)

सुखद पावस के प्रति सर्व की,
प्रगट-सी करती अति-प्रीति थी।
वसुमती-अनुराग-स्वरूपिणी,
बिलसती बहु वीर-वधूटियाँ ॥

(१२)

परम म्लान हुई बहु बेलि को,
निरस के फलिता अति-पुष्पिता।
सकल के उर अङ्कित थी हुई,
सुखद शासन की उपकारिता॥

(१३)

विविध-आकृति औ फल फूल की,
उपजती अवलोक सु बूटियाँ।
प्रगट थी महि-मंडल हो रही,
प्रियकरी प्रतिपत्ति पयोद की॥

(१४)

रस-मयी लख वस्तु असख्य को,
सरसता लख भूतल-व्यापिनी।
समझ था पड़ता बरसात में,
उदक का रस नाम यथार्थ है।

(१५)

मृतक-प्राय हुई तृण-राजि भी,
सलिल से फिर जीवित होगई।

फिर सु जीवन जीवन को मिला,

बुध न जीवन क्यों उसको कहें ॥

(१६)

व्रज-धरा यक बार इन्हीं दिनों,

पतित थी दुख-वारिधि में हुई।

पर उसे अवलंबन था मिला,

व्रज-विभूषण के भुजपोत का ॥

(१७)

दिवस एक प्रभंजन का हुआ,

अति-प्रकोप घटा नभ छा गई।

बहु-भयावनि-गाढ़-मसी--समा,

सकल-लोक-प्रकंपित--कारिणी ॥

(१८)

अशनि-पात समान दिगंत में,

रव विभीषण हो उठने लगा।

कर विदारण वायु पुनः पुनः

दमकने नभ दामिनी-सी लगी।

(१६)

मथित चालित ताड़ित हो महा,

अति प्रचंड-प्रभंजन पुंज से।

जलद थे दल के दल आ रहे,

घुमड़ते घिरते व्रज घेरते ॥

(२०)

तरल-तोयधि--तुंग--तरंग लौं,
निविड़ नीरद थे नभ घूमते ॥
प्रबल हो जिसकी बढ़ती रही,
असितता-घनता-रवकारिता

(३) प्रभात

(१)

प्रकृति वधू ने असित वसन बदला सित पहना ।
तन से दिया उतार तारकावली का गहना ॥
उसका नव अनुराग नील नभ-तल पर छाया ।
हुई रागमय दिशा निशा ने बदन छिपाया ॥

(२)

आरंजित हो उषा सुन्दरी ने सुख माना ।
लोहित आभा-वलित वितान अधर में ताना ॥
नियति-करो से छिनी छपाकर की छवि सारी ।
उठी धरा पर पड़ी सितासित चादर न्यारी ॥

(३)

ओस-बिंदु ने द्रवित हृदय को सरस बनाया ।
अवली-तल पर विलस-विलस मोती बरसाया ॥
खुले कंठ कमनीय गिरा ने बीन बजाई ।
विहग-वृन्द ने उमग मधुर रागिनी सुनाई ॥

(४)

शीतल बही समीर हुई विकसित कलिकायें।
तरुदल विलसे बनी ललिततम सब लतिकाये॥
सर में खिले सरोज हो गई सित सरिताये।
सुरभित हुआ दिगंत चल पड़ी अलिमालायें॥

(५)

हुआ बाल-रवि उदित कनक-निभ किरणें फूटी।
असित तिमिर पर परम प्रभामय बनकर टूटी॥
जगत जगमगा उठा विभा वसुधा में फैली
खुली अलौकिक ज्योति-पुञ्ज की मंजुल थैली॥

(६)

बने दिव्य गिरि शिखर मुकुट-मणि-मंडित पाये।
कनकाभा मिल गये कलित झरने दिखलाये॥
मिले सुनहली कांति लसी सुमनावली सारी।
दमक उठी वेलियाँ लाभ कर द्युति अति प्यारी॥

(७)

स्वर्ण तार से रचे चारुतम चादर द्वारा।
सकल जलाशय लसे बनी उज्वल जल-धारा॥
दिखा-दिखाकर तरल उरों को दिव्य उमंगे।
ले-लेकर रवि-बिंब खेलने लगी तरंगे॥

(८)

हीरक-कण हरिताभ तृणों पर गया उछाला।
बनी दूब रमणीय पहन कर मुक्ता-माला॥

मिले कांतिमय किरण लसे बालू के टोले ।
सारे रजगण बने रजत कण से चमकीले ॥

(६)

जिस जगती को असित कर सकी थी तम-छाया ।
रवि विकास ने विलस उसे बहुरंग बनाया ॥
कहीं हुई हरिताभ कहीं आरक्त दिखाई ।
कहीं पीत छवि कांत स्वेत किरणें बन पाई ॥

(१०)

हुआ जागरित लोक रात्रि-गत जड़ता भागी ।
बहा कर्म का स्रोत प्रकृति ने निद्रा त्यागी ॥
विजित तमोगुण हुआ सतोगुण मितता छाई ।
चकवी चावो भगी पास चकवे के आई ॥

(११)

पहने कंजन-कलित क्रीट मुक्तावलि माला ।
विकच कुसुम का हार, विभाकर-कर का पाला ॥
प्राची के कमनीय अंक में लसित दिखाया ।
लिये करों में कमल प्रभात विहसता आया ॥

१४—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म सं० १९२३ को काशी मे भाद्रपद शुक्ला पचमी को हुआ। आप अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पिता का नाम बाबू पुरुषोत्तमदास अग्रवाल था। आपके पूर्वज मुगल बादशाहों के यहाँ प्रतिष्ठित पदो पर थे। अतएव आपके घर मे फारसी का बड़ा मान था। रत्नाकरजी ने भी बी० ए० पास करने के पश्चात् फारसी लेकर एम० ए० परीक्षा देने का विचार किया किन्तु कारणवश परीक्षा न दे सके और अवागढ मे नौकरी कर ली। कुछ काल तक अयोध्या-नरेश के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। सर प्रतापसिंह के मरने पर इनकी धर्मपत्नी के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे और अच्छी ख्याति प्राप्त की।

कुछ दिनों तक आपने फ़ारसी मे कविता की, किन्तु उस समय की हिन्दी लहर ने आपके हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न किया और ब्रजभाषा में उच्चकोटि की कविता करने लगे। आप अपने समय के ब्रजभाषा की कविता के उच्चकोटि के कवि माने गये है। आपने गंगावतरण, हरिश्चन्द्र, उद्धव शतक, समालोचनादर्श, शृङ्गार लहरी, गंगालहरी, विष्णु लहरी, रत्नाष्टक और वीराष्टक आदि काव्यो के अतिरिक्त भी बहुत-सी फुटकल कविताएँ की है।

'रत्नाकर' जी ने प्राचीन काव्यो का सम्पादन भी किया है, जिनमें 'हित तरङ्गिणी', 'हम्मीर हठ', 'कंठाभरण' और 'बिहारी रत्नाकर'

विशेष उल्लेखनीय हैं। आप साहित्य सेवा में तन-मन-धन सभी लगा देते थे। आपने 'सूरसागर' का सम्पादन भी किया किन्तु क्रूर कालवश पूरा न हो सका। आजकल नागरी प्रचारिणी सभा इस कार्य को पूरा कर रही है।

आप सं० १९८९ में कलकत्ते के बीसवें साहित्य सम्मेलन के सभापति भी बनाये गये थे।

आपकी भाषा में जो प्राञ्जलता, उक्तियों का सुष्ठु प्रयोग, चित्रोपमता का जो नयनाभिरामत्व और अनुभावों का जो सचित्र वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आपका स्वर्गवास सं० १९८९ के ज्येष्ठ मास में हो गया।

(१) षट्ऋतु-वर्णन

(१)

विकसित विपिन बसंतिकावली कौ रंग,

लखियत गोपिन के अंग पियराने मैं।

बौरे वृन्द लसत रसाल-बर बारिनि के,

पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥

होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ,

बैहरि बतास लै उसास अधिकाने मैं।

काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा,

ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं॥

(२)

ठाम ठाम जीवन-बिहीन दीन दीसै सबै,

चलति चबाई-बात तापत घनी रहै।

कहै 'रतनाकर' न चैन दिन रैन परै,

सूखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै॥

जारयौ अंग अब तौ बिधाता है इहाँ कौ भयौ,

तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै।

बगर-बगर बृषभान के नगर नित,

भीषम-प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै॥

(३)

रहति सदाई हरियाई हिय-घामनि मैं,

ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।

पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति है,
सोई 'रतनाकर' पुकार पपिहा की है ॥
लागी रहै नैनन सों नीर की झरी औ,
उठै चित में चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनश्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल में,
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है ॥

(४)

आत घनश्याम के ललात दृग-कंज पाँति,
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहै।
कहै 'रतनाकर' बिरह-बिधु बाम भयौ,
चन्द्रहास ताने घात घालत घनी रहै ॥
सीत-घाम-वर्षा विचार बिनु आने ब्रज,
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा,
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै ॥

(५)

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के,
दूर दुरे कान्ह पै न तातें चलै चारौ है।
कहै 'रतनाकर' विहाइ वर मानस कौं,
लीन्यौ है हुलास-हंस बास इरिवारौ है ॥
पाला परै आस पै न भावत बतास वारि,
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है।

षटऋतु ह्वै है कहूँ अनत दिगंतनि मैं,
इत तौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है ॥

(६)

काँपि-काँपि उठत करेजौ कर चाँपि-चाँपि,
उर ब्रजवासिनी कै ठिठुर ठनी रहै।
कहै 'रतनाकर' न जीवन सुहात रंच,
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै ॥
वारिनि मैं बिसद विकास ना प्रकाश करै,
अलिनि विलास मैं उदासता सनी रहै।
माधव के आवन की आवति न बातैं नेकु,
निति प्रति तातैं ऋतु सिसिर बनी रहै ॥

(२) सगरोपाख्यान

(सगर की कथा)

(१)

पावनि सरजू तीर अवधिपुर वसति सुहावनि।
महि-महिमा-आधार त्रिपुर-शोभा सरसावनि ॥
मेदिनी-मंडल-मंजु मुद्रिका-मनि सी राजै।
वन-राजी चहुँ फेर घेर नग-सी छवि छाजै ॥

(२)

वसुधा-सुभग-सिंगार-हार-लर सरजू सोहै।
अवनि-नायक सु-ललाम धाम साकेत विमोहै ॥

भुक्ति-मुक्ति की खानि वेद-इतिहास बखानी।
जाकौ वास महान पुन्य सौं पावत प्रानी॥

(३)

सात पुरिनि में प्रथम रेख जाकी जग लेखत।
सुर समाज ह्वै दंग रंग जाकौ जुरि देखत॥
ताकी जथा स्वरूप कौन करि सकत बड़ाई।
जो त्रिलोक अभिराम रामहू के मन भाई॥

(४)

धवल-धाम अभिराम लसत तहँ बिसद बनाये।
हाट-बाट के ठाट सुघर सुन्दर मन भाये॥
रुचिर रम्य आराम जिन्हें लखि नन्दन लाजत।
वापी-कूप तड़ाग भरे जल विमल बिराजत॥

(५)

दिनकर-बंस-अनूप-भूप-गन की रजधानी।
चाय चाय के भाय सदा सासित सुख सानी॥
चारहुँ वरन पुनीत बसत जहँ आनन्द माने।
धनी गुनी शुभ-कर्म धर्मरत सुमति सयाने॥

(६)

भयौ भूप तिहि नगर सगर एक परम प्रतापी।
दिग-छोरनि लौं उमगि जासु कल कीरति व्यापी॥
रिपु-बल खल-दल-दलन प्रजा-परिजन-दुख भंजन।
गुनि-जन-जीवन-मूल सुकृति-सज्जन-मन-रंजन॥

(७)

गो ब्राह्मण प्रतिपाल ईस-गुरु-भक्त अदूषित ।
बल-विक्रम-बुधि-रूप-धाम सुभ-गन गुनि-भूषित ॥
नीतिपाल जिहिं सचिव बाल की खाल खिचैया ।
सेनप-स्वामि-प्रसेद-पाद-थल रक्त सिचैया ॥

(८)

भामिनि-भूषन भई जुगल ताकी पटरानी ।
ज्ञान सुसंगिनी जथा-भक्ति श्रद्धा सुखसानी ॥
जोवन-रूप-अनूप भूप-सुचि रुचि-अनुगामिनी ।
जिनकी प्रभा निहारि हारि सकुचति सुर स्वामिनी ॥

(९)

इक केसिनी विदर्भ-राजवर की कुल कन्या ।
दूजी सुमति सुपर्न-भव्य-भगिनी भुवि-धन्या ॥
दोउ पुनीति पति-प्रीति-पात्र दोउ पति अनुरागिनी ।
दोउ कुल-कमला-गिरा रूप दोउ अति बड़ भागिनी ॥

(१०)

भव-वैभव को जदपि भूप-ग्रह अमित उज्यारौ ।
तउ एक सुत कुल-दीप बिना सब लगत अंधियारौ ॥
इक दिन मानि ग्लानि नीर नैननि नृप ढारयौ ।
काया कष्ट उठाइ इष्ट साधन निरधार्यौ ॥

(११)

हिमगिर कै प्रस्रवन-पार्स्व मुनि जन मनहारी ।
सुर-किन्नर-गंधर्व-सिद्ध-चारन सुखकारी ॥

(११)

दोउ भामिनी लै संग भूप भृगु आश्रम आये।
करि तप उग्र सहर्ष सवर्षत सतत बिताये॥

(१२)

ह्वै प्रसन्न ऋषि राज नृपति आदर अति कीन्यौ।
मन-माँग्यो वरदान दिव्य दोउ दारनि दीन्यौ॥
लहै केसनी पूत एक कुल-संततिकारी।
साठ सहस्र सुत सुमति विपुल-बल विक्रम-धारी॥

(१३)

लहि नरवर वर प्रवर पलटि निज नगर पधारे।
पुरजन-स्वजन-समूह भये सब सुहृद सुखारे॥
कछु दिन बीते भई गर्भ गरुई दुहुँ रानी।
भरि औरै द्युति देह नवल शोभा सरसानी॥

(१४)

लहि शुभ समय निदेश केसिनी सुत इक जायौ।
गुरुवर गुनि गुन तासु नाम असमंज धरायौ॥
सुमति सलोनी जनी एक तूंबी अति अद्भुत।
निकसे जासो साठ सहस लघु बीज सरिस सुत॥

१५—रामचरित उपाध्याय

उपाध्यायजी का जन्म संवत् १९२९ वि० कार्तिक कृष्णा ४ को गाज़ीपुर के एक सरयूपारीण ब्राह्मण वंश में हुआ। आपके पिता का नाम पं० रामप्रपन्नजी था। प्रारम्भिक शिक्षा का श्रीगणेश आपके पिताजी ने ही किया किन्तु दुर्भाग्यवश सं० १९४४ में पिताजी की मृत्यु हो गई। आप सकुटुम्ब महाराजपुर जि० आजमगढ़ में आये। यह इनके पूर्वजों की जन्म-भूमि थी। इन्होंने अपने बड़े भाई पं० महादेवप्रसाद जी शास्त्री के पास संस्कृत पढ़ी पश्चात् संस्कृत पढ़ने के लिए बनारस चले गये। वहाँ पर आपने संस्कृत साहित्य में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

आपकी कविता खड़ी बोली की होती है, जो मनुष्यों के हृदय को एक दम आकर्षित कर लेती हैं। आपने कई पुस्तकें भी लिखी है, जिनके नाम निम्नलिखित है:—

रामचरित-चिन्तामणि, उपदेश रत्न माला, सत्य हरिश्चन्द्र, विचित्र विवाह आदि।

आप बड़े उदार तथा मिलनसार व्यक्ति थे। आपकी शैली साधारण तथा संस्कृत शब्दों के पुट से परिपूर्ण है। आपने गाज़ीपुर में सनातन धर्म की स्थापना की तथा एक संस्कृत पाठशाला भी खोली थी। आपका स्वर्गवास सन् १९३८ को हुआ।

विधि-विडंबना

(१)

सरसता-सरिता जयिनी जहाँ,
नवनवा नवनीत पदावली।
तदपि हा! यह भाग्य विहीन को,
सुकविता कवि-ताप करी हुई॥

(२)

जनम से पहले विधि ने दिये,
रजत, राज्य, रथादि तुम्हे स्वयं।
तदपि क्यों उसको न सराहते,
मचलते चलते तुम हो वृथा॥

(३)

पतन निश्चित है जिसका हुआ,
हठ उसे प्रिय है निज देह से।
अटल है उसकी विधि-वामता,
विनय से नय से घटती नहीं॥

(४)

तनिक चिंतित हो मत तू कभी,
मिट नहीं सकती भवितव्यता।
सुकृत रक्षक है सब का सदा,
भवन में, वन में, मन ! मानजा॥

(५)

महिमता जिसकी अवलोक के,
अनिश निंदक है खल मंडली।
सुयश क्या उसका जग में नहीं,
धवल है बल है यदि दैव का॥

(६)

हृदय! सुस्थिर होकर देख तू,
नियति का बल केवल है जिसे।
कठिन कंटक-मार्ग उसे सदा,
सुगम है, गम है करना वृथा॥

(७)

दुखित हैं धनहीन, धनी सुखी,
यह विचार परिष्कृत है यदि।
मन! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई,
विभवता भव-ताप-विधायिनी॥

(८)

सत सहस्र गुणान्वित है यहाँ,
विविध शास्त्र-विशारद है पड़े।
हृदय! क्यों उनमें फिर एक दो,
सुकृत से कृत-सेवक लोक हैं॥

(९)

जनन का मरना परिणाम है,
मरण-हीन मिले फिर देह क्यों।

मन ! बली विधि की करतूत से,
पतन का तन का चिर संग है॥

(१०)

मन ! रमा, रमणी, रमणीयता,
मिल गई यदि यह विधि योग से।
पर जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता-सम है उसे॥

(११)

अयश है मिलता अपभाग्य से,
तदपि तू डर कुत्सित कर्म से।
हृदय देख कलंकित विश्व में,
विबुध भी बुध भी विधि से हुए॥

(१२)

स्मरण तू रखना गत-शोक हो,
मरण निश्चित है, मन ! दैव के।
नियम से यम के बन जायँगे,
कवल ही बल हीन बली सभी॥

(१३)

अमर हो तुम जीव ! सहर्ष हो,
कमर बाँध सहो निज भाग्य को।
समर है करना पर काल से,
दम नहीं मन ही मन में भरो॥

(१४)

सुविध से बिध से यदि है मिली,

रसवती सरसीव सरस्वती।

मन ! तदा तुझको अमरत्वदा,

नव सुधा वसुधा पर ही मिली।

(१५)

चतुर है चतुरानन सा वही,

सुभग भाग्य-विभूषित भाल है।

मन ! जिसे मन में पर काव्य की,

रुचिरता चिर ताप-करी न हो॥

१६—सत्यनारायण 'कविरत्न'

पं० सत्यनारायण जी का जन्म संवत् १६४१ वि० जिला आगरा में ब्राह्मण कुल में हुआ था। माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण बाबा सुमेरसिंह ने इन्हें पाला-पोसा था। आपने आगरा कालिज में बी० ए० तक की शिक्षा पाई थी, किन्तु तरंगी स्वभाव होने के कारण परीक्षा में न बैठे थे। आपको बचपन से ही हिन्दी से अधिक अनुराग था। यहाँ तक कि आप अपने अंगरेज़ी अध्यापक डॉबसन साहब से हिन्दी ही में वार्तालाप करते थे। कविता करने की धुन आपको प्रारम्भ से ही थी। जो कोई भी व्यक्ति इनके पास आकर किसी की प्रशस्ति लिखने के लिये प्रार्थना करता तो उसे कभी निराश न करते थे। पं० बनारसीदासजी ने आपकी जो जीवनी लिखी है, उसमें प्रकट है, कि वैवाहिक जीवन आशातीत सफल नहीं हुआ। ब्रज-भाषा के उच्चारण करने में आप इतनी मोहकता से काम लेते थे, कि अन्य भाषा-भाषी सुनकर मुग्ध हो जाते थे। ब्रज-भाषा की आपकी कविता बड़ी महत्त्वपूर्ण है। आपके लिखे 'देशभक्त होरेशस, उत्तर रामचरित्र नाटक' तथा 'मालती माधव' मुख्य ग्रन्थ हैं।

आपने फुटकर कवितायें भी बहुत लिखी हैं। आप सादगी की मूर्ति थे। आपकी लेखनशैली बहुत ही सरस रुचिकर और मनोमुग्धकारी है।

शोक है, कि आप १६ अप्रैल सन् १६१८ को स्वर्ग सिधार गये।

(१) प्रार्थना

जयति जयति जननि—

अमल-कमल दल-वासिनि, वैभव-विपुल-विलासिनि।
नित नव-कला-विकासिनि, मुद मंगल-करनी॥
भुवन विदित गुन रासिनि, सु-मधुर मञ्जुल भासिनि।
निज जन हृदयोल्लासिनि, श्रुति पुरान बरनी॥
दारिद दुख दल नासिनि, उर उत्साह प्रकासिनि।
शान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन मन हरनी॥

(२) वसन्त

सौख्य सुधा सरसाइये, सुभग सुलभ रसवन्त।
वर विनोद बरसाइये, बसुधा बिपिन वसन्त॥१॥
दस दिसि दुति दरसाइये, सजि सुरभित सुठि साज।
जग प्रिय हिय हरसाइये, रति रसाल ऋतुराज॥२॥
अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार।
बकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार॥३॥
जहँ कोकिल कल बोलन, ठौर-ठौर स्वच्छन्द।
गुंजत षट्पद डोलत, पद पद पी मकरन्द॥४॥
जयति मधुर मन मोहन, जयति प्रकृति शृङ्गार।
सुन्दर सब बिधि सोहन, कीजिय बिपुल बिहार॥५॥
नित नव निरमल निरखौ, रमि सुरम्यता कुंज।
पुनि-पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रयता पुंज॥६॥

(३) उपालम्भ

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सों आये, वुही दया दरसैये ॥
मानि लेउ हम कूर कुढंगी कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहो तुम जन के तारन हार ॥
तुम्हरे अछत तीन-तेरह यह देस-दसा दरसावै।
पै तुमको यह जनम धरे की तनक्हू लाज न आवै ॥
आरत तुमहि पुकारत हम सब सुनत त्रिभुवन राई।
अँगुरी डारि कान में बैठे धारि ऐसी निठुराई ॥
अजहुँ प्रार्थना यही आपसों अपनो बिरुद सँवारौ।
'सत्य' दीन दुखियन की विपता आतुर आइ निवारौ ॥ १ ॥

माधव, आप सदा के कोरे।
दीन दुखी जो तुमको याँचत सो दानिनु के भोरे ॥
किंतु, बात यह, तुम स्वभाव वे नैकहु जानत नाहीं।
सुनि-सुनि सुयस रावरौ तुव ढिग आवन को ललचाहीं ॥
नाम धरै तुमको जग मोहन! मोह न तुमको आवै।
करुणानिधि, तव हृदय न एकहु करुणा बुन्द समावै ॥
लेत एक को देत दूसरेहि दानी बनि जग माही।
ऐसो हेर-फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाही ॥
भाँति-भाँति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुराये।
अति उदारता सों ले वे ही द्रोपति कों पकराये ॥

रतनाकर को मथत सुधा को कलस आप जो पायो।
मंद-मंद मुसकात मनोहर सो देवन को प्यायो॥
मत्त गयद कुवलिया के जो खेल प्राण हर लीने।
बड़ी दया दरसाइ दयानिधि, सो गजेन्द्र को दीने॥
करि के निधन बालि रावण को राजपाट जो पायो।
तहँ सुग्रीव, विभीषण को करि अति अहसान बिठायो॥
पौंडरीक को सर्वनास करि मालमता जो लीयो।
ताको विप्र सुदामा के सिर कर सनेह "मढ़ि दीयो"॥
ऐसी 'तूमा पलटी' के गुन 'नेति-नेति' श्रुति गावै।
सेस, महेस, सुरेस, गनेसहु सहसा पार न पावैं॥
इत माया अगाध सागर तुम डोबहु भारत नैया।
रचि महाभारत कहूँ लगावत अपु मे भैया भैया॥
या कारन जग मे प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ।
"बड़े-बड़े तुम रुठा धुँवारे" क्यो साँचो खुलवाओ॥

(४) अपार महिमा

तिहारो को पावै प्रभु पार।
विपुल सृष्टि नित नव विचित्र के चित्रकार आधार॥
मकरी के सम जगत् जाल यहि, सृजत और विस्तारत।
कौतुक ही मे हरत ताहि पुनि, वेद-पुरान उचारत॥
जग में तुम औ तुम में सब जग, वासुदेव अभिराम।
सकल रंग तन बसत आपके, याही सो घनश्याम॥

परम-पुरुष तुम प्रकृति-नटी सँग, लीला रचत अपार।
जग व्यापन सो विष्णु कहावत, अचरज तउ अविकार॥
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ज्ञान॥
'सत्य' छितिज सम तरसावत नित विश्वरूप भगवान्॥

(५) करुणानिधि से विनती

झूमत ज्यों मतवारो मतंग,
सो प्रेम की बेलि को होय न चेरो।
ज्ञान को आँकुस मानत ना,
मन मोह-कुपथ सों जात न फेरो॥
'सत्य' जितै ही तितै चलि जात है,
ठीक न ठाक कछू यहि केरो।
कै करुणा करि बाँह गहो,
कै कहो करुणानिधि नाम न मेरो॥

१७—मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त ने जन्म लेकर (चिरगाँव) ज़िला झाँसी को चिरस्मरणीय बना दिया। आपका जन्म सं० १९४३ में हुआ। आपके पिता का नाम बा० रामचरण था। वे भी कविता प्रेमी थे। अतः पुत्र का कविता प्रेमी होना अनिवार्य है। गुप्तजी श्री रामोपासक वैष्णव हे। गुप्तजी बडे विद्याव्यसनी होने के कारण कुछ न कुछ लिखा ही करते है। आपको राष्ट्रीय कविता से अधिक प्रेम है। आप बड़े मिलनसार और सहृदय हैं। गुप्तजी ने बहुत से मौलिक तथा अनुवादित काव्य लिखे है। खड़ी बोली के आप प्रधान कवि माने जाते है। व्याकरण की दृष्टि से आपकी भाषा शुद्ध और सस्कृत गर्भित होती है, परन्तु विशेषता यह है कि उसमें क्लिष्टता तथा गम्भीरता नहीं रहती। बँगला की भी बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद आपने किया है।

गुप्तजी का कविता क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान है। आपकी मुख्य रचनाएँ निम्नलिखित है:—

साकेत, यशोधरा, जयद्रथ वध, भारत भारती, हिन्दू, गुरुकुल, झंकार, मेघनाथ वध, विरहिणी, व्रजाङ्गना इत्यादि।

अतिरिक्त इनके पंचवटी, शक्ति, रंग में भंग, पत्रावलि, वैतालिक, तिलोत्तमा, शकुन्तला, स्वदेश सगीत, चन्द्रहास आदि अनेक छोटी छोटी पुस्तकों को भी लिखा है।

आपकी कविताओं में मार्मिकता का प्रारम्भ 'जयद्रथ वध' की रचना से होता है। साकेत और यशोधरा मे आपकी प्रतिभा की झलक पूर्णतया दृष्टिगोचर होती है। आप पूरे देश भक्त भी है। कई बार आपको जेल-यात्रा भी करनी पडी। वहाँ पर भी आप शान्त न बैठे कुछ न कुछ लिखा ही करते थे। गुप्तजी ने कविता, उदार हृदयता, देश-प्रेम और प्रतिभा इत्यादि के द्वारा संसार मे बडी ख्याति प्राप्त की है।

(१) पंचवटी पर सूर्पणखा

(१)

चकाचौंध-सी लगी देख कर प्रखर ज्योति की वह ज्वाला।
निस्संकोच खड़ी थी सम्मुख एक हास्य बदनी वाला॥
रत्नाभरण भरे अंगों में ऐसे सुन्दर लगते थे।
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ जुगनू जगमग जगते थे॥

(२)

कटि के नीचे चिकुर जाल में उलझ रहा था बाँया हाथ।
खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौंरो के साथ॥
दाँया हाथ लिये था सुरभित चित्र खचित सुमन-माला।
टाँगा धनुष की कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला॥

(३)

पर सन्देह दौल पर हो था लक्ष्मण का मन झूल रहा।
भटक भावनाओं के भ्रम में भीतर ही था भूल रहा॥
पड़े विचार चक्र में थे वे, कहाँ न जाने कूल रहा।
आज जागरित स्वप्नशाल यह सम्मुख कैसा फूल रहा॥

(४)

देख उन्हें विस्मित विशेष वह सुस्मित बढ़ती ही बोली।
रमणी की मूरति मनोज्ञ थी किन्तु न थी सूरत भोली॥
"शूरवीर" होकर अबला को देख सुभग तुम थकित हुए।
संसृति की स्वाभाविकता पर चंचल होकर चकित हुए?॥

(५)

"सुन्दरि" मैं सचमुच विस्मित हूँ तुमको सहसा देख यहाँ।
ढलती रात, अकेली अबला, निकल पड़ी तुम कौन, कहाँ॥
पर अबला कहकर अपने को तुम प्रगल्भता रखती हो।
निर्ममता निरीह पुरुषों में निस्सन्देह निरखती हो॥

(६)

शूरवीर कहकर भी मुझको तुम जो भीरु बताती हो।
इससे सूक्ष्मदर्शिता ही तुम अपनी मुझे जताती हो॥
भाषण-भंगी देख तुम्हारी हाँ, मुझको भय होता है।
प्रमदे, तुम्हें देख वन में यों मन में संशय होता है॥

(७)

कहूँ मानवी यदि मैं तुमको तो वैसा संकोच कहाँ?
कहूँ दानवी तो उसमें है यह लावण्य कि लोच कहाँ?
वनदेवी समझूँ तो वह तो होती है भोली-भाली।
तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो हे रञ्जित रहस्य वाली?॥"

(८)

"केवल इतना कि तुम कौन हो" बोली वह "हा निष्ठुर कान्त!
यह भी नहीं—'चाहती हो क्या,' कैसे हो मन मेरा शान्त?
मुझे जान पड़ता है, तुमसे आज छली जाऊँगी मैं।
किन्तु आ गई हूँ जब तब क्या सहज चली जाऊँगी मैं?"

(९)

समझो मुझे अतिथि ही अपना, कुछ आतिथ्य मिलेगा क्या ?
पत्थर पिघले, किन्तु तुम्हारा तब भी हृदय हिलेगा क्या ?
किया अधर दंशन-रमणी ने लक्ष्मण फिर भी मुस्काये।
मुसकाकर ही बोले उससे—"हे शुभ मूर्तिमती माये ! ॥

(१०)

तुम अनुपम ऐश्वर्यवती हो, एक अकिञ्चन जन हूँ मै।
क्या आतिथ्य करूँ, लज्जित हूँ, वनवासी, निर्धन हूँ मै ॥"
रमणी ने फिर कहा कि "मैने भाव तुम्हारा जान लिया।
जो धन तुम्हे दिया है विधि ने देवो को भी नहीं दिया ॥

(११)

किन्तु विराग भाव धारण कर वे न स्वयं यदि तुम त्यागी।
तो ये रत्नाभरण वार दूँ तुम पर मै हे बड़भागी !
धारण करूँ योग तुम-सा ही, भोग लालसा के कारण।
पर कर सकती हूँ मैं यो ही विपुल विघ्न-बाधा वारण ॥

(१२)

वृक्ष लगाने की ही इच्छा कितने ही जन रखते है।
पर उनमें जो फल लगते है क्या वे उन्हे न चखते है ॥"
लक्ष्मण अब हँस पड़े और यो कहने लगे "दुहाई है !"
सैतमैत की तापस पदवी मैंने तुमसे पाई है ॥

(१३)

यो ही यदि तप का फल पाऊँ तो मैं उसे न चक्खूँगा।
तुम- से जन के लिये यत्न से उसको रक्षित रक्खूँगा ॥

हँसी सुन्दरी भी फिर बोली—"यदि वह फल में ही होऊँ ।
तो क्या करो बताओ ? बस अब, क्यों अमूल्य अवसर खोऊँ ॥"

(१४)

"हा नारी ! किस भ्रम में है तू, प्रेम नहीं यह तो है मोह ।
आत्मा का विश्वास नहीं यह है तेरे मन का विद्रोह ॥
विष से भरी वासना है यह, सुधा पूर्ण वह प्रीति नहीं ।
रीति नहीं, अनरीति और यह अति अनीति है, नीति नहीं ॥"

(१५)

इसी समय पौ फटी पूर्व में, पलटा प्रकृति-पटी का रंग ।
किरण-कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग ॥
कुछ-कुछ अरुण, सुनहली कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी ।
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी ? ॥

(१६)

अहा ! अम्बरस्था ऊषा भी इतनी शुचि सस्फूर्ति न थी ।
अवनिकी ऊषा सजीव थी, अम्बर की-सी मूर्ति न थी ॥
वह मुख देख पाण्डु-सा पड़कर गया चन्द्र पश्चिम की ओर ।
लक्ष्मण के मुँह पर भी लज्जा लेने लगी अपूर्व हिलोर ॥

(१७)

चौंक पड़ी प्रमदा भी सहसा, देख सामने सीता को ।
कुमुद्वती-सी देवी देख वह, उस पद्मिनी पुनीता को ॥
एक बार ऊषा की आभा देखी उसने अम्बर में ।
एक बार सीता की शोभा देखी विगताडम्बर में ॥

(१८)

एक बार अपने अंगों की ओर दृष्टि उसने डाली।
उलझ गई वह किन्तु, बीच में थी विभूषणों की जाली॥
एक बार फिर वैदेही के देखे अंग अदूषण वे,—
सनक्षत्र अरुणोदय ऐसे रखते थे शुभ भूषण वे ॥

(१९)

सीता ने भी उस रमणी को देखा, लक्ष्मण को देखा।
फिर दोनो के बीच खींच दी एक अपूर्व हास-रेखा॥
"देवर तुम कैसे निर्दय हो, घर आये जन का अपमान।
किसके पर-नर तुम, उसके जो चाहे तुमको प्राण समान?"

(२०)

याचक को निराश करने मे हो सकती है लाचारी।
किन्तु नही आई है आश्रय लेने को यह सुकुमारी॥
देने ही आई है तुमको निज सर्वस्व बिना संकोच।
देने में कार्पण्य तुम्हे हो, तो लेने मे है क्या सोच?

(२१)

उनके अरुण चरण पद्मों मे झुक लक्ष्मण ने किया प्रणाम।
आशीर्वाद दिया सीता ने—"हो सब सफल तुम्हारे काम॥
और कहा—"सब बाते" मैंने सुनी, नही तुम रखना याद।
कब से चलता है बोलो, यह नूतन शुक-रम्भा-संवाद?॥

(२२)

बोली फिर उस बाला से वे सुस्मित पूर्वक वैसे ही।
"अजी, खिन्न तुम न हो, हमारे ये देवर है ऐसे ही॥

घर में ब्याही बहू छोड़कर यहाँ भाग आये है ये।
इस वय में क्या कहूँ ? कहाँ का यह विराग लाये है ये" ॥

(२३)

किन्तु तुम्हारी इच्छा है तो मैं भी इन्हे मनाऊँगी।
रहो यहाँ तुम अहो ! तुम्हारा बर मैं इन्हे बनाऊँगी ॥
पर तुम हो ऐश्वर्य्य शालिनी हम दरिद्र बनवासी है।
स्वामी दास स्वयं है, हम निज स्वयं स्वामिनी दासी है ॥

(२४)

रमणी बोली—"रहे तुम्हारा मेरा रोम रोम सेवी।
कहीं देवरानी यदि अपनी मुझे बनालो तुम देवी ॥
सीता बोली—"बन मे तुम-सी एक बहिन यदि पाऊँगी।
तो बाते करके ही तुम से मैं कृतार्थ हो जाऊँगी ॥

(२५)

"इस भामा विषयक भावी को अविदित भाव नहीं मेरे"।
लक्ष्मण को संतोष यही था फिर भी थे वे मुँहे फेरे ॥
बोल उठे अब—"इन बातों में क्या रक्खा है हे भाभी।
इस विनोद में नहीं दीखती मुझे मोद की आभा भी ॥

(२६)

जो वर-माला लिये आप ही, तुमको वरने आई हो।
अपना तन, मन, धन, सब तुमको अर्पण करने आई हो ॥
मज्जागत लज्जा तजकर भी तिस पर करे स्वयं प्रस्ताव।
कर सकते हो तुम किस मन से उससे भी ऐसा बर्ताव ॥

(२७)

मुसकाये लक्ष्मण, फिर बोले "किस मन से मैं कहूँ भला।
पहले मन भी तो हो मेरे जिससे सुख-दुख सहूँ भला॥
"अच्छा ठहरो" कह सीता ने करके ग्रीवा भंग अहा।
"अरे, अरे" न सुना लक्ष्मण का, देख उटज की ओर कहा॥

(२८)

आर्यपुत्र उठकर तो देखो, क्या ही सुप्रभात है आज।
स्वयं सिद्धि-सी खड़ी द्वार पर करके अनुज-वधू का साज॥
क्षण भर में देखी रमणी ने एक श्याम शोभा बाँकी।
क्या शस्य श्यामल भूतल ने दिखलाई निज कर-झाँकी॥

(२९)

मुसकाकर राघव ने पहले देखा तनिक अनुज की ओर।
फिर रमणी की ओर देखकर कहा अहा! ज्यों बोले मोर—
"शुभे, बताओ कि तुम कौन हो और चाहती हो तुम क्या"॥
छाती फूल गई रमणी की, क्या चन्दन है, कुंकुम क्या॥

(३०)

बोली वह—पूछा तो तुमने—'शुभे, चाहती हो तुम क्या?
इन दर्शनों अधरों के आगे क्या मुक्ता है, विद्रुम क्या?
मैं हूँ कौन, वंश ही मेरा देता इसका परिचय है।
और चाहती हूँ क्या, यह भी प्रगट हो चुका निश्चय है॥

(३१)

पर ये तो बस,—'कहो कौन तुम,—करने लगे प्रश्न छूँछा।
यह भी नहीं—'चाहती हो क्या?' जैसे अब तुमने पूछा॥

चाहे दोनों खरे रहें या निकले दोनों ही खोटे।
बड़े सदैव बड़े होते है छोटे रहते हैं छोटे ॥

(३२)

पहनो कान्त तुम्हीं, यह मेरी जयमाला-सी वरमाला।
बने अभी प्रासाद तुम्हारी यह एकान्त पर्णशाला॥
मुझे ग्रहण कर इस भामा के भूल जायँगे ये भ्रू-भंग।
हेमकूट, कैलास आदि पर सुख भोगोगे मेरे संग॥

(३३)

मुसकाई मिथिलेश-नन्दिनी—"प्रथम देवरानी, फिर सौत!
अङ्गीकृत है मुझे, किन्तु तुम माँगो कहीं न मेरी मौत॥
मुझे नित्य दर्शन भर इनके तुम करती रहने देना।
कहते है इसको ही अँगुली पकड़ प्रकोष्ठ पकड़ लेना॥

(३४)

भेद दृष्टि से फिर लक्ष्मण को देखा स्वगुण-गर्जनी ने।
तर्जन किया किन्तु लक्ष्मण की अधरस्थिता तर्जनी ने॥
बोले वे—"बस, मौन कि मेरे लिये हो चुकी मान्या तुम।
यों अनुरक्ता हुई आर्य पर जब अन्यान्य वदान्या तुम॥

(३५)

प्रभु ने कहा कि तब तो तुमको दोनों ओर पड़े लाले।
मेरी अनुज-बधू पहले ही बनी आप तुम हे बाले॥
हुई विचित्र दशा रमणी की सुन यों एक एक की बात।
लगे नाव को ज्यों प्रवाह के और पवन के भिन्नाघात॥

(३६)

कहा क्रुद्ध होकर तब उसने—"तो अब मैं आशा छोड़ूँ ?
जो सम्बन्ध जोड़ बैसी थी उसे आप ही सब तोड़ूँ ?
किन्तु भूल जाना न इसे तुम, मुझमें है ऐसी भी शक्ति।
कि झखमार कर करनी होगी तुमको फिर मुझ पर अनुरक्ति ॥

(३७)

गोल कपोल पलट कर सहसा बने भिड़ो के छत्तों से।
हिलने लगे उष्ण साँसों से ओठ लपालप लत्तों से ॥
कुन्दकली से दाँत हो गये बढ़ बराह की दाढ़ों से।
विकृति, भयानक और रौद्र रस प्रगटे पूरी बाढों से ॥

(३८)

उस आक्रमणकारिणी के झट लेकर शाणित तीक्ष्ण कृपाण।
नाक-कान काटे लक्ष्मण ने, लिये न उसके पापी प्राण ॥
और कुरूपा होकर तब वह रुधिर बहाती, बिल्लाती।
धूल उड़ाती आँधी ऐसी भगी वहाँ से चिल्लाती ॥

(२) यात्री

रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह में,
चलता हूँ आज किसी चंचल की चाह में।
काँटे लगते है, लगै, उनको सराहिये,
कंटक निकालने को कंटक ही चाहिये ॥
घहरा रहे हैं घन चिन्ता नहीं इनकी,
अवधि न बीत जाय हाय ! चार दिन की।

छाया है अंधेरा, रहे, लक्ष्य है समक्ष ही,
दीप्ति मुझे देगा अभिराम-अभिराम कृष्णपक्ष ही ।।
ठहरो, समक्ष ही तो क्षुब्ध पारावार है,
करना उसे ही अरे ! आज मुझे पार है।
भूत मिलें, प्रेत मिलें, वे मरे—मैं जीता हूँ,
भीति क्या करेगी भला, प्रीति—सुधा पीता हूँ ।।
मौत लिए जा रही है, तो फिर क्या डर है ?
दूती वह प्रिय की है, दूर नहीं घर है।
आपको न देखा आप मैंने कभी आप में,
डूबेगा विलाप आज मिलाप में ।।

(३) झंकार

इस शरीर की सकल शिराएँ हों तेरी तंत्री के तार,
आघातों की क्या चिन्ता है, उठने दे ऊँची झंकार।
नाचे नियति, प्रकृति सुर साधे, सब सुर हों सजीव, साकार,
देश देश में, काल काल में, उठे गमक-गहरी गुंजार ।।
कर प्रहार, हाँ, कर-प्रहार तू, मार नहीं, यह तो है प्यार,
प्यारे, और कहूँ क्या तुमसे, प्रस्तुत हूँ मैं, हूँ तैयार।
मेरे तार तार से तेरी, तान तान का हो विस्तार,
अपनी अँगुली के धक्के से खोल अखिल श्रुतियों के द्वार।
ताल ताल पर भाल झुकाकर मोहित हों सब बारम्बार,
लय बँध जाय और क्रम क्रम से सम में समा जाय संसार ।।

१८—जयशंकरप्रसाद

कविवर बाबू जयशंकरप्रसादजी का शुभ जन्म कान्यकुब्ज वैश्य कुल मे माघ शुक्ला दशमी संवत् १९४६ मे हुआ। आप गोवर्द्धन सराय (काशी) के निवासी हैं। आपके पिता देवीप्रसादजी (सुँघनी साहु) तम्बाकू के प्रसिद्ध व्यापारी थे। बाल्यकाल मे ही आपके पिता का देहावसान हो गया। 'प्रसादजी' की शिक्षा घर पर ही हुई। आपको बचपन से ही कविता से प्रेम था। सत्रह वर्ष की अवस्था मे आपके बड़े भाई का भी देहान्त हो गया। तभी से गृहस्थी का भार आपके ऊपर आ गया, जिससे आपकी शिक्षा भी रुक गई। अंग्रेजी, संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। पहले पहल बचपन मे आप पुराने ढर्रे पर व्रजभाषा मे कविता किया करते थे जो आपके 'चित्राधार' नामक संग्रह मे संकलित है। पश्चात् आपने रहस्यवाद सम्बन्धी कविताएँ लिखनी प्रारम्भ कीं और आज कल तो आप हिन्दी मे नवयुग प्रवर्तक कवि पाये जाते हैं। आपके विचार मौलिक होते हैं। आपकी भाषा में तत्सम शब्द बहुत है। आपने कहीं-कहीं अप्रचलित छन्दो का प्रयोग किया है। भाषा आपकी संस्कृत मिश्रित और प्रायः क्लिष्ट भी होती है। विचारो की दुरूहता और दार्शनिकता के कारण कहीं-कहीं दुर्बोध हो जाती है।

आपकी मुख्य रचनाएँ:—

झरना, आँसू, चित्राधार एव मन्वन्तर इत्यादि हैं।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आप कविता ही नहीं किन्तु नाटककार, कहानी और उपन्यासकार भी है और प्रत्येक विषय के लिखने में अपना जोड़ नहीं रखते।

आपकी कुछ और पुस्तकें निम्नलिखित हैं:—

नाटक—अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, ध्रुव स्वामिनी, स्कन्दगुप्त आदि।

कहानियाँ—आँधी, प्रतिदर्शन, छन्द और छाया आदि।

उपन्यासों मे 'ककाल' एवं तितली प्रसिद्ध हैं। आपकी कविता के कुछ अश प्रस्तुत पुस्तक मे दिये गये है।

(१) किरण

(१)

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज
रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ॥

(२)

धरा पर झुकी प्रार्थना-सदृश,
मधुर-मुरली-सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्वकी विकल,
वेदना दूती-सी तुम कौन ?

(३)

अरुण-शिशु के मुख पर सविलास
सुनहली लट घुँघराली कान्त,
नाचती हो जैसे तुम कौन ?
उषा के अंचल में अशान्त ॥

(४)

भला, उस भोले मुख को छोड़
चली हो किसे चूमने भाल।
खेल है कैसा—या है नृत्य ?
कौन देता है सम पर ताल ॥

(५)

कोकनद मधु धारा सी तरल
विश्व मे बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानन्द
उठाकर सुन्दर सरस हिलोर ॥

(६)

स्वर्ग के सूत्र-सदृश तुम कौन ?
मिलाती हो उससे भूलोक ।
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध
बना दोगी क्या विरज, विशोक ॥

(७)

सुदिनमणि, वलय-विभूषित उषा—
सुन्दरी के कर का संकेत ।
कर रही हो तुम किस को मधुर
किसे दिखलाती प्रेम निकेत ॥

(८)

चपल ठहरो-कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त ।
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसन्त ॥

(२) चित्रकूट

(१)

उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची में ऐसे।
सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे॥
धीरे धीरे उठे नई आशा से मन में।
क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छन्द गगन में॥

(२)

चित्रकूट भी चित्र लिखा सा देख रहा था।
मंदाकिनी-तरंग उसी से खेल रहा था॥
स्फटिक शिला आसीन राम-वैदेही ऐसे।
निर्मल सर में नील कमल नलिनी हो जैसे॥

(३)

निज प्रियतम के संग सुखी थी कानन में भी।
प्रेम भरा था वैदेही के आनन में भी॥
मृग–शावक के साथ मृगी भी देख रही थी।
सरल विलोकन जनक-सुता से सीख रही थी॥

(४)

निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही है, श्रीमान् भोगते सुख बन में भी॥
चन्द्रातप था व्योम, तारका-रत्न जड़े थे।
स्वच्छ दीप था सोम, प्रजा तरु पुंज खड़े थे॥

(५)

शान्त नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी।
कमल-कली का नृत्य हो रहा था मनहारी॥
बोल उठा जो हंस देखकर कमल-कली को।
तुरत रोकना पड़ा गूँजकर चतुर अली को॥

(६)

हिली आम की डाल चला ज्यों नवल हिंडोला।
आह कौन है पंचम स्वर से कोकिल बोला॥
मलयानिल प्रहरी सा फिरता था उस वन में।
शांति शांत हो बैठी थी कामद-कानन में॥

(७)

राघव बोले देख जानकी के आनन को।
'स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को?'
'नील मधुप को देख, वहीं उस कज-कली ने।
स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक लली ने॥

(८)

बोले राघव—'प्रिये भयावह से इस बन में।
शंका होती नहीं तुम्हारे कोमल मन में?'
कहा जानकी ने हँसकर—'उसको है क्या डर?
जिसके पास प्रवीण धनुर्द्धर ऐसा सहचर!'

(९)

कहा राम ने—'अहा महल मन्दिर मन भावन।
स्मरण न होते तुम्हें कहो क्या वे अति पावन॥
रहते थे झनकार-पूर्ण जो तब नूपुर से।
सुरभि-पूर्ण पुर होता था जिस अन्तःपुर से॥'

(१०)

जनक-सुता ने कहा—'नाथ यह क्या कहते हैं?
नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं॥
कहो उसे प्रिय प्राण! अभाव रहा फिर किसका।
विभव चरण का रेणु तुम्हारा ही है जिसका॥

१९—गोपालशरणसिंह

ठाकुर गोपालशरणसिंहजी का जन्म सम्वत् १९४८ पौष सुदी प्रतिपदा को हुआ। आप नई गढ़ी (रीवाँ राज्य) के जागीरदार हैं। आपके पिता का नाम ठाकुर जगत बहादुरसिंह था, जो बड़े धर्मनिष्ठ थे। आपकी शिक्षा पहले घर पर ही हुई। पश्चात् दरबार हाईस्कूल से एंट्रेंस की परीक्षा पास करके कालिज में पढ़ने की इच्छा रखते हुए भी कई विशेष कारणों की वजह से न पढ़ सके।

ठाकुरसाहब बचपन से ही कविता प्रेमी रहे और कविता करने लगे। पहले व्रजभाषा में कविता करते थे, फिर खड़ी बोली की तरफ़ आपकी प्रवृत्ति झुकी। अब खड़ी बोली में फुटकल कविता करते हैं। आपकी फुटकल कविताओं का संग्रह माधवी नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी कविता सरस और सरल होती है। इसी से वह जनप्रिय है। कवित्त सवैयों में भी मधुरता पाई जाती है। भाषा साफ़ सुथरी होती है और कविता में अच्छा प्रवाह पाया जाता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के शब्दों में तथा कविता की दृष्टि से भी आप राजा हैं। आपकी कविता में व्रजभाषा की तरह मिठास रहता है।

(१) घनश्याम

श्यामल है नभ श्याम महीतल,
श्याम महीरुह भी अभिराम हैं।
श्यामल नीरधि नीर मनोहर,
नीरद नीरज श्याम ललाम हैं॥
श्यामल हैं बन बाग सरोबर,
श्यामल शैल महा छवि-धाम है।
कौन भला कह है सकता,
इसमे उसमें किसमें घनश्याम है॥ १॥
हो अथवा वह हो न कही पर,
हाँ, सब के मन में घनश्याम हैं।
सुन्दर श्याम-सरोरुह-से छवि—
धाम विलोचन में घनश्याम हैं।
हैं करते अभिराम विहार,
छिपे उर-कानन में घनश्याम हैं।
जीवन दायक हैं घन के सम,
जीवन जीवन में घनश्याम हैं॥ २॥

(२) वह छवि

मञ्जुल मयंक में मयङ्कमुखी आनन में,
वैसी निष्कलंक कान्ति देती न दिखाई है।
दृग छिप जाते देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है।

न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनोहारी छटा उसमे समाई है ।
जिसको विलोक फीकी शरद जुन्हाई होती,
वह मन-भाई छवि किसको न भाई ॥ १ ॥

नित्य नई शोभा दिखलाई है लुभाती वह,
जिसमें सलोनी सुघराई कहो, ऐसी है ।
केतकी की, कुन्द की, कदम्ब की कथा है कौन,
कल्पलतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है ।
रति में, रमा मे रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनकलता मे कमनीयता न वैसी है ।
छहर छहर छहराती है छबीली छटा,
आहा, वह सुघर सजीली छवि कैसी है ॥ २ ॥

सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते है ।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मञ्जुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं ।
फूलो में उसी की शोभा देख के मिलिन्द वृन्द
फूले न समाते "गुन गुन" गुण गाते हैं ।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतग जल जाते है ॥ ३ ॥

कञ्ज कलिका मे नही सुषमा मयङ्क की है,
कोमलता कञ्ज की मयङ्क ने न पाई है ।

चम्पक कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में, मणि की मनोज्ञता में,
एक दूसरे की प्रभा देती न दिखाई है।
सब की निकाई सुघराई मोददायी महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥ ४॥
तेजधारियों मे है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु भानु सब से महान तेजवान है।
पादपों में पारिजात, पर्वतों में हिमवान,
नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की खान है।
मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छविसा न कोई छविमान है॥ ५॥
वन उपवन में सरोज में सरोवर में,
सुमन सुमन में उसी की सुघराई है।
चम्पक चमेलियों में नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है।
देख पड़ती है रंग रंग के विहङ्गमों में,
सुषमा उसीकी कुंज-कुंज में समाई है॥
सब ठौर देखो, वही छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है॥ ६॥

२०—सियारामशरण गुप्त

गुप्तजी बाबू मैथिलीशरणजी के छोटे भाई हैं। आपका जन्म सम्वत् १९५२ चिरगाँव जिला झाँसी मे भादो की पूर्णिमा को हुआ। आप भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान ही कविता करते है। आपने अपनी रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों पर हृदय मे चुभने वाली चुटकियाँ ली है। इनकी भाषा संस्कृतमय, सरल तथा सुबोध खडी बोली की होती है। इनकी कविता में करुणा रस प्रधान होता है। कविता पढते समय हृदय में करुणा की लहरे उठने लगती है। आपकी फुटकल कविताएँ पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी छोटी-छोटी कविताओं के सग्रह अनाथ, आर्द्रा, मौर्य विजय, विषाद, दुर्वादल आदि नामों से प्रकाशित हो चुके है।

१—घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज,
मल मल कर मेरे तन में।
किस निर्मम निर्दय ने मुझको,
बाँधा है इस बन्धन में॥
फाँसी सी है पड़ी गले में,
नीचे गिरता जाता हूँ।
बार बार इस अन्ध कूप में,
इधर उधर टकराता हूँ॥
ऊपर नीचे तम ही तम है,
बन्धन है अवलम्ब यहाँ।
यह भी नही समझ मे आता,
गिरकर मैं जा रहा कहाँ॥
काँप रहा हूँ, भय के मारे,
हुआ जा रहा हूँ प्रिय प्राण।
ऐसे दुखमय जीवन से हा!
किस प्रकार पाऊँ मैं त्राण॥
सभी तरह हूँ विवश करूँ क्या,
नहीं दीखता एक उपाय।
यह क्या यह तो अगम नीर है,
डूबा, अब डूबा मैं हाय॥

भगवन् 'हाय' बचालो अब तो,
तुम्हे पुकारू मैं जब तक।
हुआ तुरन्त निमग्न नीर मे,
आर्त-नाद करके तब तक॥
अरे, कहाँ वह गई रिक्तता,
भय का भी अब पता नही।
गौरववान हुआ हूँ सहसा,
बना रहूँ तो क्यों न यही॥
पर मैं ऊपर चढ़ा जा रहा,
उज्ज्वलतर जीवन लेकर।
तुम से उऋण नहीं हो सकता,
यह नव जीवन भी देकर॥

२१—श्री वियोगी हरि

आपका नाम श्री हरिप्रसाद है। आपका जन्म संवत् १९५३ छतरपुर (बुन्देलखण्ड) मे हुआ। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण है। आपने मैट्रिक्युलेशन तक शिक्षा पाई है। सस्कृत के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं। आप जब ७ वर्ष के थे तभी आपके पिता का देहान्त हो गया था। आपका लालन-पालन आपके नाना ने किया था। आपको प्रारम्भ से ही कविता का शौक है। आप ब्रजभाषा के प्रधान कवि माने जाते है। आपने गद्य-साहित्य में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। वीररस की कविताओ मे आप सिद्धहस्त है। वीररस को आपने व्यापक अर्थ में लिया है यथा दानवीर, दयावीर, धर्मवीर एवं युद्धवीर। हिन्दी साहित्य मे वीररस के शुद्ध काव्य बहुत कम हैं। भूषण, चन्द्रशेखर बाजपेयी, सूदन आदि कतिपय कवियो की रचनाओ को छोडने पर इसमें कुछ शेष रहता ही नही। अत आपकी वीररस-पूर्ण 'वीर सतसई' का साहित्य मे बहुत महत्त्व है। सम्मेलन द्वारा इस पुस्तक पर १२००) रुपये का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

आपकी भाषा क्लिष्ट होते हुए भी सरस और रोचक होती है। प्रेम माधुर्य की व्यञ्जना में आपको असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। आपके निम्न ग्रन्थ मुख्य है:—

अन्तर्नाद, विश्वधर्म, साहित्य-विहार, प्रेम-योग और वीर सतसई आदि।

(१) वीर-पच्चीसी

(१)

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधुरिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥

(२)

दया-धर्म जान्यो तुही सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिवि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥

(३)

अजय-मोह-गज-केसरी जयतु तथागत बुद्ध ।
दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज-दुःख करि युद्ध ॥

(४)

मृत-रोहित-पट दानु लै धार्यौ धर्म अमन्द ।
खंग-धार-व्रत-धोर, धनि सत्यवीर हरिचन्द्र ॥

(५)

किधौं उच्च हिम-शृंग-वर किधौं जलधि गम्भीर ।
किधौं अटल ध्रुव-धाम कै दानवीर मति धीर ॥

(६)

सुरतरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि ढेरु ।
इक दधीच की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥

(७)

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल ।
रण दूलह ! बरि लाइयौ दुलहिन विजय सुबाल ॥

(८)

धनि धनि, सो सुकृती व्रती,सूर-सूर, सतसन्ध।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलत जासु कबन्ध॥

(९)

लरतु काल सों लाख में कोई माई कौ लाल।
कहु, केते करवाल कों करत कठ कलमाल॥

(१०)

रण सुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुंड।
उठ कबन्ध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु रुंड॥

(११)

लोहित-लथ पथ देखिके खंड-खड-तनत्रान।
निकसत हुलसत युद्ध में बड़ भागिनु के प्रान॥

(१२)

कादर तौ जीवित मरत दिन में बार हजार।
प्रान पखेरू वीर के उड़त एक हीं बार॥

(१३)

जगी जोति जहँ जूझ की खगी खड्ग खुलि झूमि।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य-धन्य रण-भूमि॥

(१४)

सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि! धनि-धन्य!
नहिं तो सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य॥

(१५)

नमो नमो कुरु खेत ! तुव महिमा अकथ अनूप ।
कण-कण तेरौ लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥

(१६)

बोय सीसु सींच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत ।
वीर-कृषक कीरति लहौ करी मही जस-सेत ॥

(१७)

हिन्दू-कवि हिन्दुवानि-कवि, हिन्दी कवि रसकन्द ।
सुकवि, महाकवि, सिद्ध कवि, धन्य-धन्य कविचंद ॥

(१८)

सिवा-सुजस-सरसिज सुरस मधुकर मत्त अनन्य ।
रस भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥

(१९)

लहरति चमकति चावसों तुव तरवार अनूप ।
घाय डसति, चौंधति चखनु, नागिन दामिन रूप ॥

(२०)

वह शकुन्तला लाड़िलो कबतें माँगतु रोय ।
"खड्ग-खिलौना खेलिवे अबहिं लाय दै मोय" ॥

(२१)

कह्यौ माय मुख चूमि कैं कर गहाय करवाल ।
"जनि लजाइयो दूध मो पयोधरनु को लाल ॥

(२२)

चूर-चूर ह्वै अन्त लौं रखियो कुल की लाज।
जननि दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज" ॥

(२३)

गावत गायक बीन लै विरही राग बिहाग।
नाहिं अलापत आज क्यों मंगल मारू राग॥

(२४)

लावत रंगि रंगरेज! क्यो पगिया रंग-बिरंग।
अब तौ, बस भावतु वहै सुन्दर रंग सुरंग॥

(२५)

जियत बाग की पीठ पै धनु-धारीनु-चढ़ाय।
क्यो न, चितेरे! चित्र तू उमंगि उतारत आय॥

(२) खड्ग

परयौ समुझि नहि आज लौं, यो अचरज को हेत।
फरयौ असित असि लता तें, सुजस चारु फलु सेतु॥१॥

जदपि इतो पानिप चढ्यौ, अचरजु तदपि महान।
नित प्रति प्यासी ही रही, लही न तृप्ति कृपान॥२॥

बसति आपु लघु म्यान में, वह कृपान लघु गात।
त्रिभुवन में न समातु पै, सुजसु तासु अवदात॥३॥

प्रलयकारिनी तुव छटा, लपलपाति तलवार।
खात-खात खल सीस जो लई न अजहुँ डकार॥४॥

बसै जहाँ करबाल तू, रमैं तहाँ किमि बाल।
एक संग निबसति कहूँ, ज्वाल मालती माल ॥५॥
धारि सील असि बालिके! अब तूँ भई सयानि।
अरी हठीली कित तजी, वह इठलाहट बानि ॥६॥
तड़ित और तरवार में, समता किमि ठहराय।
ज्यौंही यह चमकति दमकि, त्योंही वह दुरि जाय ॥७॥
लहरति चमकति चाव सो, तुव तरवार अनूप।
धाय डसति चौंधति चखनु नागिन दामिनि रूप ॥८॥
वह नाँगी तरवार हूँ, बनी लजीली नारि।
नहि खोल्यो मुख म्यान ते, है मनु परदा वारि ॥९॥
करति करम तरवार जो, सोइ प्रखर तरवार।
जानति कबहुँ कृपा न करि कहिय कृपान करार ॥१०॥
सुभट लाल! असि-दूतिका, ठाढ़ी सहज सयानि।
मानिनि वसुधा-बालि कौ, यहीं गहावति पानि ॥११॥
रण-नायक-भामिनि तुहीं, कुलकामिनि करबाल।
अन्त हूँ प्रीतम कंठ तूं, भई लपटि रतिमाल ॥१२॥
सोभित नील असीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल।
लसै तमाल-लतान पै मनहुँ बधूटी-माल ॥१३॥

———

२२—सुमित्रानन्दन पंत

"पंत" जी का शुभ जन्म स० १९५८ में अलमोडे में हुआ। इनके पिता प० गंगादत्त पंत बडे धर्मनिष्ठ थे। पिता में जिस सहृदय-भावना ने धर्मनिष्ठा का चोला पहना था, वह पुत्र में कवित्व होकर आई। आप पार्वतीय ब्राह्मण है। 'पंत' जी ने इन्टरमीजियेट तक अध्ययन किया। किन्तु परीक्षा न देकर कालेज से बिदा ले ली। कालेज छोडकर प्रकृति देवी की अप्रतिबध गोद को अपना शिक्षालय बनाया। प्रकृति देवी के ही इष्ट से इन्हें कवित्व सिद्धि हुई।

हिन्दी कविता में आप नवीन युग के प्रवर्तक माने जाते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य का आप पर अच्छा प्रभाव पडा है। आपने कविता-क्षेत्र में एक नया पौधा लगाया है। कविता में काट-छाँट भी अपने ढङ्ग की है।

आप खड़ी बोली मे ही कविता करते हैं। उसमें सस्कृत के शब्दों का बाहुल्य रहता है, परन्तु वह बहुत मधुर और कोमल है। आपने व्याकरण के नियमों को यत्र-तत्र तोड दिया है—विशेषकर लिङ्ग-निर्णय के सम्बन्ध में, जो भाषाविदों को खटकता है। केवल हम तो यही कहकर संतोष कर लेते हैं:—

लीक लीक कायर चलै, लीकै लीक कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें, सायर सिंह सपूत॥

आजकल के रहस्यवादी कवियों में आपको उच्च स्थान प्राप्त है। आपकी कविताएँ फुटकल विषयों पर होती हैं, जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

कविता की तरह गद्य भी आपकी अनोखी प्रतिभा का परिचायक है। आपकी शैली मे अब धीरे-धीरे हिन्दी भावों को ही प्रधानता मिलती जा रही है।

आपकी निम्न रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं.—

१—ग्रन्थि। २—उच्छ्वास। ३—वीणा। ४—पल्लव। ५—गुञ्जन। ६—ज्योत्सना इत्यादि।

आपने 'हार' नामक एक उपन्यास भी लिखा है। इधर कुछ दिनों से आप नाटक रचना की ओर झुके हैं।

(१) स्वप्न

बालक के कंपित अधरों पर
किस अतीत स्मृति का मृदु हास,
जग की इस अविरत निद्रा का
करता है रह रह उपहास ?

स्वप्नों की उस स्वर्ण-सरित का
सजनि ? कहाँ है जन्म स्थान ?
मुसकानों में उछल उछल वह
बहती है किस ओर अजान ?

किन कर्मों की जीवित-छाया
उस निद्रित-विस्मृति के संग,
आँख मिचौनी खेल रही है
किन भावों की गूढ़ उमग ?

मुँदे नयन पलकों के भीतर
किस रहस्य का सुखमय चित्र,
गुप्त-वंचना के मादक-कर
खींच रहे है सजनि विचित्र ?

निद्रा के उस अलसित बन में
वह क्या भावी की छाया,
दृग-पलकों में विचर रही है,
भुवन मोहनी या माया ?

(२) 'छाया'

कहो कौन हो दमयंती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हे भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?

× × ×

पीले पत्तो की शय्या पर
तुम विरक्ति सी मूर्छा-सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह मलिन दुख विधुरासी ?

× × ×

पछतावे की परछाईं सी
तुम भू पर छाई हो कौन ?
दुर्बलता, अँगड़ाई ऐसी
अपराधी-सी, भय से मौन ?

× × ×

निर्जनता के मानस-पट पर
बार-बार भर ठंडी सांस—
क्या तुम छिपकर क्रूरकाल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

× × ×

निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर

× × ×

किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमल तर !

× × ×

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़कर निज तरुवर के संग,
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढँककर अपने कोमल अंग;

× × ×

पर सेवा रत रहती हो तुम
हरती नित पथ-श्रान्ति अपार ।

× × ×

हाँ सखि ! आओ बाँह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण ।
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान ।

———

२३—सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म सं० १९६१ में श्रावण शुक्ला ५ को प्रयाग के निहालपुर मुहल्ले मे हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर रामनाथसिंह था। आपका विवाह ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी० ए०, एल-एल० बी० के साथ हुआ है। तभी से आप जबलपुर में रहती है। बाल्यकाल से ही आपको कविता की लगन रही है। इनके पिता भी कविता और गाने के रसिक थे। हिन्दी-साहित्य से आपको बड़ा प्रेम है। काग्रेस आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपकी कविता भी राष्ट्रीय भावनाओ से भरी होती है। आधुनिक स्त्री-कवियों मे आप सर्वोच्च मानी जाती हैं। सुभद्राजी की वाणी में ओज है अतः आपकी कविता की प्रत्येक पंक्ति हृदय मे नवजीवन और नसों मे रक्त की धारा प्रवाहित कर देती है। आपकी लेखनी से निकले हुए प्रत्येक शब्द भावों से परिपूर्ण तथा हृदय को आकर्षित करने वाले होते हैं। कविता के साथ ही साथ आप असाधारण कहानी लेखिका भी है।

सुभद्राजी की कविताओ का एक सग्रह 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त 'बिखरे मोती', 'त्रिधारा', 'सभा का खेल' और 'उन्मादिनी' आदि आपके रचे हुए ग्रन्थ हैं, जिनसे हिन्दी-साहित्य में आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। शब्द तथा वाक्य-विन्यास बड़े सरस, सरल और प्रसाद गुणयुक्त हैं। भाषा हृदयग्राही, तथा आकर्षक होती है। आपको 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' पर दो बार सेक्सरिया पुरस्कार मिल चुका है। आजकल आप कांग्रेस के कार्य में संलग्न हैं। जो भी कार्य आप करती हैं उसे सच्ची लगन से करती हैं।

(१) मातृ-भाषा

वीणा बज सी पड़ी खुल गये नेत्र और कुछ आया ध्यान ।
मुड़ने की थी देर, दिख पड़ा उत्सव का प्यारा सामान ॥ १ ॥
जिसको तुतला-तुतला करके शुरू किया था पहली बार ।
जिस प्यारी भाषा में हमको प्राप्त हुआ है माँ का प्यार ॥ २ ॥
उस हिन्दूजन की गरीबिनी हिन्दी—प्यारी हिन्दी का ।
प्यारे भारतवर्ष—कृष्ण की उस वाणी कालिंदी का ॥ ३ ॥
है उसका ही समारोह यह उसका ही उत्सव प्यारा ।
मै आश्चर्य-भरी आँखों से देख रही हूँ यह सारा ॥ ४ ॥
जिस प्रकार कगाल बालिका अपनी माँ धन-हीना को ।
टुकड़ों की मुहताज आज तक दुखिनी को, उस दीना को ॥ ५ ॥
सुन्दर वस्त्राभूषण-सज्जित देख चकित हो जाती है ।
सच है या केवल सपना है, कहती है, रुक जाती है ॥ ६ ॥
पर सुन्दर लगती है, इच्छा यह होती है कर लें प्यार ।
प्यारे चरणों पर बलि जाएं, करले मन भर के मनुहार ॥ ७ ॥
इच्छा प्रबल हुई, माता के पास दौड़ कर जाती है ।
वस्त्रो को सँवारती, उसको आभूषण पहानाती है ॥ ८ ॥
इसी भाँति आश्चर्य मोद-मय आज मुझे झिझकाता है ।
मन में उमड़ा हुआ भाव बस मुँह तक आ रुक जाता है ॥ ९ ॥

प्रेमोन्मत्ता होकर तेरे पास दौड़ जाती हूँ मैं।
तुझे सजाने या सँवारने में ही सुख पाती हूँ मैं ॥१०॥
तेरी इस महानता में क्या होगा मूल्य लजाने का।
तेरी भव्य मूर्ति को नकली आभूषण पहनाने का ॥११॥
किंतु हुआ क्या माता! मैं भी तो हूँ तेरी ही संतान।
इसमें ही संतोष मुझे है, इसमें ही आनन्द महान ॥१२॥
मुझसी एक-एक की बल तू तीस कोटि की आज हुई।
हुई महान सभी भाषाओं की तूही सिरताज हुई ॥१३॥
मेरे लिये बड़े गौरव की और गर्व की है यह बात।
तेरे द्वारा ही होवेगा भारत में स्वातन्त्र्य प्रभात ॥१४॥
अपने व्रत पर मर मिट जाना यह जीवन तेरा होगा।
जगती के वीरो द्वारा शुभ पद-वंदन तेरा होगा ॥१५॥
तू होगी सुख-सार देश के बिछुड़े हृदय मिलाने मे।
तू होगी अधिकार देश-भर को स्वातंत्र्य दिलाने में ॥१६॥

(२) ठुकरादो या प्यार करो

[१]

देव! तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते है।
सेवा मे बहुमूल्य भेट वे, कई रंग के लाते है ॥

[२]

धूमधाम से, साजबाज से! वे मन्दिर में आते है।
मुक्ता, मणि, बहुमूल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ॥

[३]

मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मन्दिर में पूजा करने को आई॥

[४]

धूप दीप नैवेद्य नहीं हैं, झाँकी का शृंगार नहीं।
हाय! गले में पहिनाने को फूलों का भी हार नहीं॥

[५]

मैं कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को, वाणी में चातुर्य नहीं॥

[६]

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की भी विधि न जानती, फिर भी नाथ, चली आई॥

[७]

पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो।
दान, दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो॥

टिप्पणी

१—कबीरदास

(१) साखी

पृष्ठ ३—साखी, (शुद्ध रूप साक्षी) = सबूत, प्रमाण। कबीरदास की वाणी का सग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग किये गये है। १—रमैणी, २—सबद, ३—साखी। साखी मे लगभग पॉच हजार दोहे हैं। कबीर आदि सन्तो ने अपने इन दोहों मे परमात्मा का प्रमाण दिया है। इनमे अनेक प्रकार की नीति-रीति का वर्णन है।

दोहा १—काके = किसके। गुर = मार्ग, भेद। २—बाढी = बढई। ४—रुना = रोने लगा। ५—दव=दावाग्नि। जो पेडो की आपस की रगड से पैदा हो जाती है। ७—बासिक, (शुद्ध रूप बासुकि) = सर्प। हिलोलि = हिलाकर। १०—दीठ, (शुद्ध रूप दृष्टि)=निगाह। १३—बबूल=कीकर, एक प्रकार का कांटेदार पेड। १५—गॉडर = गाडर, भेड़। १७—पाहरु=पहरेदार। २१—पति=प्रतिष्ठा, इज़्ज़त। ३०—बहुमार = अनेक प्रहार भी सहने पडते है। ३३—भुवँगा (शुद्ध रूप भुजग)=सॉप।

(२) पद

पद १—गरबसि=गर्व, घमण्ड। व्रात = ढेर। बनिता = स्त्री। २—पचिहारे=थक गये। बिभुका = तङ्ग आना।

३—सोध = विचार। पारधि=शिकारी। कहँ वह फन्द कहां वह पारधि—यहां पर कवि का उस कथा की तरफ संकेत है कि जब मारीच कपटमृग बनकर राम को शिकार के लिये ले गया था। इसी कारण सीता-हरण हुआ।

नीच हाथ हरिचन्द बिकाने—(कथा) महाराज राजा हरिश्चन्द्रजी अपने अटल सत्य के कारण रानी और राजकुमार को बेच स्वयं भङ्गी के हाथ बिके, पर सत्यव्रत न छोडा।

बलि पाताल धरी—(कथा) जब राजा बलि ९९ यज्ञ पूर्ण कर चुके और १००वाँ यज्ञ करने लगे तो विष्णु भगवान् ने बावन अगुल का ब्राह्मण शरीर धारण किया और महाराज बलि के यहां जाकर तीन पैड ज़मीन दान मे मांगी। बलि महाराज इस रहस्य को न समझे। सहर्ष तीन पैंड पृथ्वी देना स्वीकार किया। विष्णु भगवान्‌जी ने तीन पैड मे तीन लोक नाप लिये और बलि महाराज को पाताल भेज दिया।

कोटि गाय नित पुण्य करत नृग ·· ·· (कथा)—नृग नामक राजा बडा ज्ञानी धर्मात्मा था। वह नित्य असख्य गौएँ दान दिया करता था। एक बार भूल से दान की हुई गाय को दान दे गय इस पाप के फल मे गिरगिट (एक प्रकार का जानवर) बनकर गोमती नदी के किनारे एक अन्ध कूप मे रहना पडा।

राहु-केतु औ भानु-चन्द्रमा·· ···यह कथा पुराणो में प्रसिद्ध है कि देवताओ ने जब समुद्र मथा तो अमृत निकला और वह जब देवताओ मे बॉटा गया तो उसे राहु राक्षस भी देवता का रूप धारण कर पी गया। जब सूर्य-चन्द्रमा द्वारा यह बात भगवान् ने सुनी तो उन्होंने अपने चक्र से राहु के दो टुकडे कर दिये, जो राहु और केतु कहलाये। तभी से राहु चन्द्रमा के पीछे पडा और केतु ने सूर्य के विरुद्ध युद्ध किया।

४—तिरगुन = सत, रज और तम।

५—राजा अबरीष—(कथा) राजा अंबरीष बडे विष्णु भक्त थे। ये एकादशी व्रत कर द्वादशी मे ब्राह्मणो को भोजन करा पारण किया करते थे। एक बार इन्होने दुर्वासा ऋषि को निमन्त्रण दिया। मुनि के आने में विलम्ब होता देख तथा पारण का समय समाप्त होता जान राजा ने ब्राह्मणो की सलाह से विष्णु का चरणोदक पी लिया, जिसमे व्रत भग न हो। जब दुर्वासा आये तब उपर्युक्त बात जान वे क्रोधित हुए, कि तूने निमन्त्रित ब्राह्मण को भोजन बिना खिलाये ही स्वय क्यो खा लिया। राजा को नष्ट करने के लिये कृत्या उत्पन्न की। विष्णु के

भेजे सुदर्शन चक्र ने अबरीष की रत्ता की और दुर्वासा के पीछे लगा। फिर तो मुनि विष्णु के पास पहुँचे। तब विष्णुजी ने अबरीष से त्तमा कराया। उबारे = उद्धार किये।

२—महात्मा सूरदास

(१) विनय

१—पगु = लॅगडा, अपाहिज। रंक = गरीब। २—कूप = कूआ। करील = एक प्रकार का जंगली पेड, जिसके फल कडवे होते है और इन्हे टेट कहते है। ३—अविगत = अज्ञेय। अमित = बहुत। ४—पटो = पट्टा। अव = पाप। टॉडो = शिरोमणि।

५—अधर = होठ। ६—जिन = मत। पैया = पैर। अनत = (शुद्ध रूप अन्त,)=और जगह। ७—बदन = मुख। ८—कानि = संकोच। भाजन = बर्तन। १०—ललकि = उत्साह के साथ।

११—खोरी = गली। भुरइ = बहकाई। १२—पतिआई = विश्वास कर।

१३—मसि = स्याही। दन्तुली = दॉत।

१४—कृतहि = उपकार। १५—तन = तरफ। सघन = घने १६—भार = भट्टी।

३—मलिक मुहम्मद जायसी

सिंहलद्वीप वर्णन

पृष्ठ १६—नियरावा=निकट। अमराउ=आम की पंक्ति। भूमिहुत= पृथ्वी से लेकर। रैनि = रात। यह धूपा = जीव का परमात्मा से अलग

होकर संसार मे सतप्त होने का अभिप्राय है। हुलास = आनन्द। चुहचूही=एक चिड़िया। महरि=एक चिड़िया। हारा=हाल अथवा दीनता।

पृ० १७—पँवरी=पौली। अनाई=मँगवाकर। गरेरी = घुमावदार। केलि = क्रीडा, खेल। मेघावर = बादल की घटा। बीजु = (शु० विद्युत) बिजली। कुमुद = एक प्रकार का पुष्प, जो रात के समय चन्द्रमा को देखकर खिलता है।

पृ० १८—पौरहि = लेटते है। मरजिया = वह मनुष्य जो समुद्र आदि से अपना प्राण खतरे मे डाल कर मोती आदि व्यापार की वस्तुएँ निकाले। जमीरा = बिजौरा नीबू। राते = लाल। हरफारफोरी = लवली नामक लता।

४—गोस्वामी तुलसीदास

(१) पार्वती—तपस्या

१ दोहे से १० तक—धरणिधर = पहाड। घरनि = स्त्री। सराहत = प्रशसा। राउरि = आपकी। बाउर = बावला। विबुध = देवता।

११ से २१ तक—दम्पति = स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी। भेवहि = भिगोते है। निमज्जन = स्नान।

२२ से ३१ तक—असन = भोजन। कुधर = पहाड। पेषन = देखने। विलगु = बुरा।

३२ से ४१ तक—भव = ससार। फुर = सत्य।

४२ से ४६ तक—कनउड = कृतज्ञ।

(२) तुलसी-दोहावली

१—स्वाति = एक नक्षत्र का नाम। इस नक्षत्र में जो पानी बरसता है, उसी को चातक पीकर संतुष्ट होता है। ५—चङ्ग = पतग। विवेक= ज्ञान। तुला = तराजू। ६—बुवै = बोवे। लुनै = काटना।

(३) नीति

१—नाकपति = स्वर्ग का राजा अर्थात् इन्द्र । ३—परुष = तेज । ९—बीछी = बिच्छू । १०—मयूर = मोर ।

५—मीराबाई

पद

१—नूपुर = बिछुवे । ५—मुँहवो = मँहगा । सुँहवो = सस्ता । ६—पात = पत्ते । भौसागर = ससार रूपी सागर । ७—कानि = मर्यादा, टेक । ८—खेवटिया = मल्लाह ।

६—केशवदास

परशुराम-संवाद

१—मत्त दन्ति = मस्त हाथी । दुन्दुभि = नगाडा, धौंसा । तनत्राण = कवच । ४—शिखीन = अग्नि । औटि = पिघलाकर । दीरघ= कठिन । शितकण्ठ = महादेव । ७—क्रतु = यज्ञ । ९—बारन = हाथी । लच्छन = लक्ष्मण । अरिहा = शत्रुघ्न । ११—दल = पत्ते । १२—स्रुवा= हवनकुण्ड में घी गेरने का पात्र । मेखला = तगडी । १३—हैहयाधि-राज = सहस्रार्जुन । अदेव = राक्षस । भार्ग वेश = महादेवजी के वेष में । १४—अवतंस = भूषण, श्रेष्ठ । १७—हलाहल = विष । कौरन = ग्रास । १९—चाप = धनुष । निषङ्ग = तरकस । २२—षट्मुख = स्वामी कार्तिकेय । २३—बाडवानल = एक प्रकार की अग्नि, जो समुद्र मे उत्पन्न होकर पानी को शोषण किया करती है । २६—मढ़ि = मढैगा, होगा । २७—पछावरि=रायता । २८—निग्रह = दण्ड । अच्छत = (शु० रू० अक्षत) चावल । सक्षत = घायल । २९—मीचु = मृत्यु । ३०—रती = कुछ भी । हती = मारी । ३१—वनितान=स्त्री । ३६—तनत्राण=

कवच । उबरे हैं = बचे है । ३७—शाल = दुःख । ४१—भेव = भेद । छिप्र = शीघ्र । ४२—वात=वायु । रए = उच्चारण किये । ४४—अनङ्ग= कामदेव । ४७—पातक = पाप । पगु = पैर, चरण ।

७—रसखान

(१) कृष्ण—महिमा

१—मँझारन = बीच मे । पुरन्दर = इन्द्र । कूल = किनारे । २—लकुटी = डण्डा, लकडी । ३—ठैया = स्थान । चेटक = जादू । ५—अखड = जो टूट न सके । छोहरियाँ = लडकियाँ । ६—अंक = गोद । ७—भूषण = गहने । ८—अधरान धरी = होठों पर रक्खी हुई ।

१०—नेक ...... कहावै = जिस परमात्मा को तनिक भी हृदयस्थ कर सकने से महाजड व्यक्ति भी रस की खान कहे जाते है । रसखान शब्द के दो अर्थ होते हैं । १—रस की खान, रस का भण्डार । २—रसखान = कवि का नाम । अवार = विलम्ब । ११—सजनी = सखी । १२—तटनी = नदी । १३—जैबो = जाना । वारौं = निछावर करना । जटित = जडा हुआ । १५—ढोटा—पुत्र,लडका । तरनितनूजा = यमुना ।

८—बिहारीलाल

दोहा

दोहा १—जोय = देखी । २—ससि सेखर=चन्द्रमा है मस्तक में जिसके अर्थात् महादेव । अकस=स्पर्द्धा, दूसरे से बढ जाने की इच्छा । ४—सलौने=सुन्दर । आतप=धूप । ७—मोष, (शुद्ध रूप मोक्ष)=मुक्ति । ८—बानि = आदत । १०—सनेह = स्नेह, प्रेम, दूसरे पक्ष में तेल । १२—दमामा = नगाडा । १४—दुराज = दो राज्य । १५—चखनि =

आँख। १६—मयङ्क = चन्द्रमा। १७—बरु = चाहे। २३—कनक = सोना। कनक = धतूरा। २६—कहलाने = संतप्त हुए, कातर हुए। अहि=सर्प। निदाघ = ग्रीष्म। ३१—सिरज्यौई=बनाया।

सूदन

(सुजान-चरित)

पृष्ठ ५६—राउ = राजा। मलार = मल्हार राव। उनाह्यौ=उत्सुक। भुवगाहि = शेषनाग आदि। गुज्ज = गुर्जर देश। हाडौती = क्षत्रिय वंश।

पृष्ठ ५७—घहरायगी = बजैगी। मामलति = झगडा। भाषि = कहकर। बाहिनी = सेना। दर कूच=गली और दरवाज़ा। द्यौस=दिन। दीह=दीर्घ, बडे।

पृष्ठ ५८—दावाग्नि = बन की आग। वारयौ=प्रहार करना। गब्बै = घमण्डी। पब्बै=पर्वत। जुझार=शूरवीर।

१०—दीनदयालगिरि

दोहे १—द्विजन=ब्राह्मण, पक्षी। रावरी=आपकी। चपला=लक्ष्मी, बिजली। २—तृषा=तृष्णा। ३—झाँवरो =काला। डावरो=बच्चा। ५—पाहन=पत्थर। ६—गरल=विष। संसिन=अनाज के पौधे। ८—ग्राव = पत्थर। बलाहक=बादल।

११—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृष्ठ ६५—पतितन = पापियो। अवगाहत = नहाते हैं। निगम = वेद। अलकनन्दा=गंगाजी। जन्हुतनया = गङ्गा। शतधा=सैकड़ों प्रकार।

पृष्ठ ६६—सीमन्तिनी = स्त्री । लोल = चञ्चल । बलित = घिरा हुआ । रवबीन = वीणा का शब्द । कास = कांस, एक प्रकार की तेज़ नोक वाली घास । अघ = पाप । सोपान = सीढ़ी । विद्रावनी = भगाने वाली ।

पृष्ठ ६७—त्रिपथगा = गङ्गा । लेखे = सामने । नातरू = नहीं तो । बादि = व्यर्थ ।

पृष्ठ ६८—घन = बादल । सुरधुनि = गङ्गा ।

१२—नाथूरामशङ्कर शर्मा

(१) पावस-वर्णन

१—ससृति = संसार । निरे = केवल । २—अमोघ = सफल, अचूक । ३—मिस = बहाना । ८—अभ्र = बादल । वृत्त = घेरा ।

(२) ब्रह्मचर्य-महिमा

खल = दुष्ट ।

राजर्षि भीष्म पितामह

मनोज = कामदेव ।

१३—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

(१) गोचारण से प्रत्यागमन

१—अवसान = अन्त । लोहित = लाल वर्ण । कमलिनी कुल वल्लभ = सूर्य । २—समुत्थित = उठना । विहगावली = पक्षियों का समूह । ३—अनुरञ्जित = लाल । पादप = वृक्ष । ४—केलि थली = क्रीड़ास्थान । ५—तरणिबिम्ब = सूर्य की परछाईं । तिरोहित = छिपना । ६—कन्दरा = गुफा । क्वणित = शब्द करना । रवि सुता =

यमुना। ७—कियत = कुछ। ८—गोरज = गायों के पैरों से उठी धूलि। ६—निनादित = शब्दायमान। ११—ककुभ=दिशा। लसे=शोभायमान। कदन=विनाश। राजता=शोभा देता। १२—अतसि=अलसी। सरोरुह= तालाव में उत्पन्न होने वाला अर्थात् कमल। १५—बहन थी=धारण करती थी। तमसावृत=अँधेरे से युक्त।

(२) वर्षा-वर्णन

१—बक=बगुला। २—अंशु=किरण। वियत=आकाश। ३—दामिनी=बिजली। ४—वर-वारिद-व्यूह=श्रेष्ठ मेघों का समूह। रसा= पृथ्वी। ५—कर सुप्लावित=डुबा कर। ७—दल=समूह। ६—पिक- कोयल। १०—भेक=मेढ़क। १३—प्रत्तिपत्ति = कृपा, प्रसाद। १४— यथार्थ = ठीक। १६—भुजपोत=बाहुरूपी जहाज। १७—प्रभजन आँधी। १८—अशनि पात—बज्र गिरना। रव=शब्द। २०—निबिड़- घने। असितता=कालापन।

(३) प्रभात

१—असित=काला। सित=सफ़ेद। वदन=मुख। २—छपाकर चन्द्रमा। ३—उमग=उल्लसित हो, उत्साहित हो। ४—समीर- वायु, हवा। ५—विभा=प्रकाश। ६—कलित=सुन्दर। ७—रविबिम्ब=सूर्य की परछाईं। ८—लसे=शोभायमान। ६—आरक्त=लाल। १०—जड़ता आलस्य। ११—कंजन=कमल। क्रीट=मुकुट। विकच- खिले हुए।

१४—जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

(१) षट् ऋतु-वर्णन

१—पिक=कोयल। पतझार=पतझड़, लज्जा जामा। बेहरि=हवा। मीन मेष="मीने मेषे वसन्त" वसन्त ऋतु मीन और मेष के सूर्य आने पर होती है, सोच विचार क्या है?

२—बात=वायु, बातचीत । पतछीन=पत्तो के बिना, लज्जा रहित । अनी=सेना । जार्यौ अग=कामदेव, सूर्य ।

३—ऊरध=ऊपर, ऊर्ध्व स्वाँस, यह बुरी स्वाँस है । रत्नाकर=समुद्र, कविका=उपनाम । चमक=बिजली की दमक, थोडी-थोडी देर में उठने वाली या पीडा ।

४—दिखसाध = देखने की इच्छा । चन्द्रहास = चाँदनी, तलवार । फरत दमामी = पुस्तैनी पट्टा । दिवैया = देने वाली ।

५—निषंग = तरकस । कुसुमायुध = कामदेव, पुष्प के आयुद्ध वाला । चलत न चारो = वश न चलना । मानस = मन, मानसरोवर । आस = दिशा, आशा ।

६—रच = कुछ भी । अलिनी = भौंरो, सहेलियो, सखियो । बातें = हवाएँ, सँदेशा, समाचार । अलिनी = भौंरे । माधव = कृष्ण, वसंत ।

(२) सगरोपाख्यान

(सगर की कथा)

१—त्रिपुर शोभा सरसावन = तीनो लोकों की शोभा बढाने वाली । मेदिनी = पृथ्वी । २—वसुधा सुभग-सिगार हार-लर = पृथ्वी के सुन्दर शृङ्गार के हार की लडी । साकेत = अयोध्या । ३—अभिराम = सुन्दर । ४—आराम = बग़ीचे । नन्दन = देवताओ के बगीचे का नाम । तडाग = तालाब । ५—दिनकर = सूर्य । ६—दिग्छोरनि = सारी पृथ्वी पर । मकृति-मजन-मन-रंजन = सज्जनो के मन को प्रसन्न करने वाले शुभ कर्म । ७—अदूषित = अकलंकित, निष्कपट । बाल की खाल खीचना = यह एक मुहावरा है, अर्थात् तर्क वितर्क करने वाले, गहरी से गहरी बात खोजने वाले । सेनप-स्वामी-प्रसेद-पात थल=स्वामी के पसीना गिरने की जगह । ८—जुगल = दो । प्रभा = शोभा, कान्ति । ९—सुपर्न-भव्य-भगिनी = राजा सुपर्ण की सुन्दर बहिन । १०—इष्ट-

साधन = व्रत करना । निरधारयौ = निश्चय किया । ११—प्रस्रवन-पार्श्व = प्रस्रवन पर्वत के समीप । भामिनी = स्त्री । उग्र-तीक्ष्ण, कठिन । सतत = लगातार । १२—दारनि = स्त्रियों । १३—गरुई = भारी । नवल = सुन्दर । १४—निदेश—आज्ञा ।

१५—रामचरित उपाध्याय

२—रजत = चाँदी । ३—विधिबामता = भाग्य का उलटा होना । ४—अनिश=सतत, निरन्तर । ६—नियति = भाग्य । परिष्कृत = शुद्ध । १०—सिकता = बालू । विबुध = विद्वान्, देवता । १३—समर = युद्ध । १४—चतुरानन = ब्रह्मा । तापकरी = दुःख देने वाली ।

१६—सत्यनरायण 'कविरत्न'

(१) प्रार्थना

मुद = हर्ष । श्रुति = वेद । सतत = लगातार ।

(२) बसन्त

सुठि = सुन्दर । पलास = ढाक, एक प्रकार का पुष्प । षट्पद - भौंरा । मकरन्द = शहद ।

(३) उपालम्भ

१—अछत = रहते हुए । अगुरी डारि कान मे बैठे = कुछ भी ध्यान न रखना । 'अंगुरी कान मे डाले बैठे रहना' यह एक मुहाविरा भी है' भाव है कि इधर उधर का कुछ भी ध्यान न होना । आतुर- शीघ्र । २—यांचत = माँगने । दानिनु के भोरे = दानियों मे जो गुण हैं उनके भ्रम मे पडकर । रावरौ = तुम्हारा । भांति-भांति'' '' पकराये = इन पंक्तियों से भाव है कि बचपन की अवस्था में भगवान् श्रीकृष्ण

गोपियो के वस्त्रो को चुराकर कदम्ब के पेड पर चढ़ जाते थे तथा कौरवो की भरी सभा मे द्रौपदी के चीर को दुःशासन द्वारा खीचे जाने के समय उसकी साडी को अनन्त कर दिया था।

गयन्द कुबलिया = कुबलियापीड नाम के हाथी को जिसे कंस ने अपने दरबार मे आने के समय उनके मार्ग को रोकने के लिए फाटक पर खडा करवा दिया था। उसे कृष्णजी ने बलरामजी की सहायता से मार डाला था।

गजेन्द्र = उस कथा की ओर सकेत है जिस हाथी को ग्राह ने पकड लिया था और उसकी दुःख भरी आवाज सुनने पर भगवान् विष्णु ने रक्षा की थी।

निधन = मृत्यु।

पौडरीक = काशी के एक राजा ने अपने को वासुदेव बतलाया और कहा कि तुम इस नाम को मत रक्खो। श्रीकृष्ण भगवान् की अस्वीकृति पाने पर राजा ने आक्रमण कर दिया। भगवान् ने उसे मार डाला।

मालमता = धन दौलत। तूमापलटी = उलट फेर करना। कथा— इस विषय मे एक कथा प्रसिद्ध है कि पुराने समय मे एक चोर ने कहा कि अब चोरी न करूँगा। उसने साधुका भेष रख लिया। परन्तु साधु होने पर भी जब आस-पास के साधु सब सो जाते तो वह उठ कर एक दूसरे के तूँबो को अदल बदल देता। जगने पर सब बडे चकित होते और बडे परेशान भी होते। इस तरह आपस मे बडी गडबडी मचती। अन्त मे वह साधु चोर पकडा गया। परिणाम निकला कि वह पीटा भी बहुत गया। इसी से तूमापलटी एक मुहावरा प्रसिद्ध हुआ है। नेति नेति = अन्त रहित अन्त रहित।

निबटी रकम = चतुर चालाक। बड़े-बडे तुम मठा धुँवारे = भाव है, कि तुम्हारे पास कुछ नहीं, परन्तु दूसरों की दृष्टि मे सब साधन सम्पन्न प्रतीत होते हो।

(४) अपार महिमा

मकरी = मकड़ी। क्षितिज = जहाँ पर दूर से देखने मे पृथ्वी और आकाश मिले हुए से मालूम होते है, पर है वास्तव में अलग-अलग और दूर-दूर।

(५) करुणानिधान से विनती

आँकुस = अंकुश, मतवाले हाथी को वश मे करने का हथियार।

१७—मैथिलीशरण गुप्त

(१) पंचवटी पर सूर्पणखा

१—प्रखर=तेज। बाला=स्त्री। रत्नाभरण=रत्न जड़े गहने। २—चिकुर=बाल। जाल=समूह। टाँगा धनुष ..... डाला=कामदेव ने कल्पलता पर अपना धनुष या झूला डाला है। ३—दौल=झूला। ४—संसृति=संसार। ५—प्रगल्भता=ढिठाई। निरीह=इच्छारहित। ६—भीरु=डरपोक। भाषण भगी=बातचीत का ढग। ७—लावण्य=सुन्दरता। ९—दशन=दाँत। १०—अकिञ्चन=तुच्छ, साधारण। ११—वारण = दूर। १२—सैतमैत = मुफ्त में। १५—दिवा = दिन। १७—प्रमदा = स्त्री। कुमुद्वती सी = कुमुद एक प्रकार के श्वेत और सुन्दर पुष्प के समान। २०—कार्पण्य = कृपणता, दीनता।

शुक-रम्भा-संवाद = शुकदेवजी व रम्भा नाम की अप्सरा की बाते। (कथा) शुकदेवजी व्यास मुनि के पुत्र थे। एक बार घृताची नामक इन्द्र की अप्सरा शुकी (तोती) के रूप मे पृथ्वी पर फिर रही थी। उसकी सुन्दरता पर व्यासजी मुग्ध हो गये। उसीसे शुकदेवजी की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर शुकदेवजी माया-प्रपंचो को छोड वन मे तपस्या करने लगे। पिता के कहने पर जब विवाह न किया तो रम्भा नामक अप्सरा ने इन्हे प्रेम-मार्ग की तरफ़ लाना चाहा। पर ये फिर

भी तैयार न हुए। इन्हीं शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को भागवत की कथा सात दिन सुनाई थी।

२६—मज्जागत = स्वाभाविक। २७—ग्रीवा = गर्दन। उटज = कुटी। २९—कुंकुम = केसर। ३२—पर्णशाला = पत्तों की कुटी। ३३—प्रकोष्ठ = पहुँचा, हाथ से भाव है। (उँगली पकड कर पहुँचा पकडना यह मुहावरा है)। ३४—तर्जनी = अंगूठे के पास की अँगुली। ३७—कुन्द = एक प्रकार का श्वेत पुष्प। बराह = सूअर।

१८—जयशंकरप्रसाद

(१) किरण

१—किंजल्क = केसर। पराग—धूलि। ३—अश्रान्त = लगातार। ५—कोकनद = लाल कमल।

(२) चित्रकूट

१—कुमुदिनी नाथ = चन्द्रमा। प्राची = पूर्व दिशा। २—आसीन = बैठे हुए। ३—शावक = बच्चे। ४—चन्द्रातप = चँदोवा। सोम = चन्द्रमा। ५—स्रोत = धारा। अली = भौरा। ६—नवल = सुन्दर। प्रहरी = पहरेदार। ७—लली = पुत्री। ८—सहचर = साथी। ९—अन्त.पुर = रनवास। १०—विभव = वैभव, ऐश्वर्य। रेणु = धूलि।

१९—गोपालशरणसिंह

(१) घनश्याम

१—महीरुह = वृक्ष। नीरद = बादल। नीरज = कमल।

२—श्याम सरोरुह = श्याम वर्ण का कमल। जीवन जीवन मे = जीवो के जीवन मे, प्रत्येक प्राणी के जीवन में।

(२) वह छवि

१—मयक = चन्द्रमा । प्रभा = चमक । जुन्हाई = चाँदनी ।

२—रति = कामदेव की स्त्री का नाम ।

३—दीप्यमान = चमकते हुए । बाँकी = अनोखी ।

४—निकाई = समूह । लुनाई = सुन्दरता ।

५—कृशानु = आग । पारिजात = इन्द्र के बगीचे के फूल ।

२०—सियारामशरण

घट

पृ० १२८—कर्कश = कठोर, कडी । म्रिय प्राण = नष्ट प्राण । त्राण = रक्षा । पृ० १२६—आर्तनाद = दु.ख भरी आवाज ।

२१—श्री वियोगी हरि

१—कंस-करि-केहरि = कस रूपी हाथी के लिए सिह के समान । केशीकाल = केशी नामक राक्षस के मारने वाले अर्थात् श्रीकृष्ण । ४—मृत-रोहित-पटदान लै = मरे हुए सत्यवादी हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व के कफ़न को हाथ मे लेकर ६—दधीचि = इनके विषय में कथा प्रसिद्ध है कि इन्होने इन्द्र को अपनी रीढ की हड्डी दान कर दी थी। वह हड्डी वज्र बनी और उसी से वृत्रासुर नामक राक्षस का नाश हुआ । कोटि = करोडों । ६—करवाल = तलवार । ११—तनत्रान = कवच । १२—कादर = कायर, अधीर । १६—लही = प्राप्त की । १६—चखनु = आँख । पयोधरनु = स्तनों, यहाँ भाव दूध से है । २३—अलापत = स्वर मे गाना गाना ।

(२) खड्ग

१—असि=तलवार । २—पानिप = कान्ति, आब । ३—अवदात= शुभ्र, सफेद । ७—तडित = बिजली ।

२२—सुमित्रानन्द पंत

(१) स्वप्न

पृष्ठ १३८—अविरत = निरन्तर—विराम-विहीन ।

(२) छाया

पृष्ठ १३९—दमयन्ती सी—राजा नल की स्त्री का नाम दमयन्ती था । राजा नल दमयन्ती को पेड के नीचे सोती हुई छोडकर चले गये थे । विरह=वियोग । विधुरा सी = व्याकुल सी, अशक्त-सी ।

पृष्ठ १४०—पृष्ठ पर = पन्ने पर । पथश्रान्ति=रास्तेगीरों की रास्ते की थकावट । जुड़ा ले=शीतल करलें । द्रुत=शीघ्र । अन्तर्धान=छिपना, यहाँ भाव मिल जाने से है ।

२३—सुभद्राकुमारी चौहान

(१) मातृ-भाषा

७—मनुहार = प्रार्थना, विनती ।

(२) ठुकरा दो या प्यार करो

१—उपासक = प्रार्थना करने वाले, भक्त । ४—नैवेद्य = पूजा की सामग्री । ६—विधि = रीति, नियम ।

मुद्रक—सत्यपाल शर्मा कान्ति प्रेस, माईथान—आगरा ।